पंत और उनका गुञ्जन



लेखक

प्रो० केसरी कुमार, एम० ए०

हिन्दी विभाग,

पटना कालिज



प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

पुस्तक प्रकाशक तथा-विक्रेता

किनारी बाजार, देहली

मूल्य ३ रु० २ आ०

प्रकाशक

सुन्दर लाल जैन

मैनेजिंग प्रोप्राइटर

मोतीलाल बनारसीदास

किनारी बाजार, देहली

मुद्रक

शांतिलाल जैन

स्वतन्त्र नवभारत प्रेस, कदमकुआ, पटना

गुरुवर

डा० विश्वनाथ प्रसाद जी

एम०ए०, बी०एल०, साहित्याचार्य, डी०लिट् (लदन)

को

सादर-सप्रेम

समर्पित

मुद्र

मैनेजि

मोतील

किनारी

अपनी बात

प्रस्तुत पुस्तक 'पंत और उसका काव्य' का, जो क्रममें हमारी चौथी आलोचना-पुस्तक है, संक्षेपित रूप है। गुण-दोष-विवेचन का भार आप पर है। हम तो अपने श्रद्धालु पाठकों के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिनका स्नेह हमें अनायास ही मिलता रहा है।

—केसरी कुमार

हिन्दी विभाग,
पटना कालेज।
५-५-५०

भूमिका

भूमिका रूप में पाठक कुछ भी पढ़ें इसके पहले, मैं उन्हें यह बतला देना आवश्यक समझूँगा कि पाठक इसे न पढ़ें तो कोई हर्ज नही।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक, प्रो० श्री केसरी कुमार, का यह आग्रह कि मैं इस पुस्तक की भूमिका लिख दू, कतिपय कारणो से मुझे महत्त्व देने की उनकी महानता का परिचायक है। उन कारणो में एक तो बडा स्पष्ट है जिसका उल्लेख कर देना, भूमिका के दृष्टिकोण से, अनावश्यक नही होगा। मैं साहित्य का, विशेषकर हिंदी साहित्य का, न कभी प्रतिभाशाली छात्र रहा, न अध्येयता ही। ऐसी अवस्था में, एक समर्थ व्यक्ति द्वारा लिखी गई एक अध्ययनपूर्ण और गभीर पुस्तक की, वह भी जब एक ऐसे व्यक्ति के काव्य पर लिखी गई पुस्तक हो, जो वर्तमान युग के मूर्धन्य कवियो में एक हो, भूमिका लिखने का आग्रह मुझ जैसे अकिचन से करना, सिवा मुझे प्रतिष्ठा देने के और हो ही क्या सकता है।

मैं ने ऊपर कहा है कि लेखक की यह एक अध्ययन पूर्ण और गभीर पुस्तक है। इसे ऐसा होना अनिवार्य ही है। लेखक, श्री केसरी कुमार जी, हिंदी साहित्य के एक उद्भट अध्येयता है और समय-समय पर भगवती भारती के भडार को उन्होने अन्य समीक्षात्मक पुस्तकें भी अर्पित की है। अत, वे सर्वथा समर्थ है कि कविवर सुमित्रानदन पत के गुजन के वादी-विवादी स्वरो पर अपने गभीर विचार व्यक्त करें।

मैं श्री केसरी को नजदीक से जानता हूँ, कहूँ, काफी नजदीक से, तो भी शायद अत्युक्ति न हो। इसे जानने के नाते ही मैं इस बात को निस्सकोच होकर जोर से कह सकता हूँ कि आलोचना के लिये, विशेषकर काव्य की, वे पूर्णत अधिकारी और समर्थ है। मैं उनका जीवन-वृत्त, जानता हूँ, और उसे जभी अपनी आँखो के सामने आद्यात देख जाता हूँ तो,

मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से, एक बात उभर-उभर कर सामने आती है, यह कि उनका मानसिक गठन मूलत रोमाटिक और काव्यात्मक, यानी पोएटिक, रहा है। इसलिये मैं चाहूँगा कि आप, जो उनकी इस किताब को पढेंगे, उन्हें जानें। यह जानना अनावश्यक नही होगा। इसके लिये, या उनकी पहले की ओर आनेवाली अन्य पुस्तको के लिये, एक पैठ देने में, यह जानना सहायक होगा। शायद कहने की आवश्यकता नही कि लेखक के व्यक्तित्व (जिस पर उसकी जिदगी की घटनाओ का प्रभाव पडता ही है) और उसकी कृति में बडा गहरा सबध रहता है। जरा और आगे बढकर कहू तो यो कहूँगा कि उसका साहित्य उसके व्यक्तित्व के उन्नयित रूप की अभिव्यक्ति है।

वह जमाना प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति का था। सन् १९१९ का। दो राष्ट्रो की धमनियो में उठा प्लेग तो शात हो चुका था, लेकिन पटना जिला के बाढ सबडिवीजन के सैदनपुर नामक गाव में, प्लेग नाम की बीमारी लोगो की जान का गाँहक हो रही थी। प्लेग से डर-डर कर लोग घर छोडकर परती जमीनो में झोपडे बनाकर रह रहे थे। वैसा ही एक झोपडा स्वर्गीय वगला प्रसाद सिह जी का भी था। उसी झोपडे में ३१ जनवरी १९१९ को उस बालक ने जन्म लिया जिसकी सज्ञा आज केसरी कुमार है। शायद जन्म लेने की असाधारण परिस्थिति ने (सोचिये, जब चूहो ने औरो की जान लेने मे आनाकानी नही की तब एक नये बालक का जन्म हो!) सामान्य से परे के लिये इन पर प्रभाव डाला।

बालपन में, पाँच वर्ष की अवस्था जब रही होगी, घर के दालान पर पढानेवाले मौलवी साहब ने उर्दू के अलिफ से इनका विद्यारम्भ कराया। कुछ दिनो के बाद ये गाँव के ही लोअर प्राइमरी में पढते रहे। पास किया, तब पास के दूसरे गाँव में अपर प्राइमरी की पढाई शुरू हुई। वहाँ से पास करके फिर दिघवारा मिडिल स्कूलमें छठे क्लास तक पढकर गाँव वापस आ गये। पिता जी की इच्छा थी कि हिंदी, उर्दू, और सस्कृत ही भर ये पढें और वैद्य हो जाँय तो सबसे अच्छा। वैसे परिवार में अनेक जनो ने

अंग्रेजी पढी थी। चाचा 'कैनाल' एस० डी० ओ० थे। पर सबके सब जवानी में ही चल बसे, इसलिए एक आतंक-सा छाया था। लेकिन श्री केसरी कुमार की तीव्र इच्छा थी कि अंग्रेजी शिक्षा इन्हें मिल सके। फिर भी चार-पाँच साल गांव पर ही इन भाषाओं का अध्ययन करते रहे और पिता जी की जानकारी के बिना ही अंग्रेजी भी चुपके-चुपके पढते गये। इसी बीच, इनका विवाह कर दिया गया।

उसके बाद बात सन ३१ की होगी। असहयोग आंदोलन की लहर गाँव-गाँव तक फैल गई थी। सैदनपुर भी बचा नहीं रह सका। और उससे अछूते और विमुख श्रीकेसरी कुमार भी नहीं रह सके। पिता जी सर से पाँवतक खद्दर पहनते थे, इलाके में होनेवाली सभाओं का सभापतित्व भी करते थे। लेकिन पिता जी से कहकर तो असहयोग में भाग लिया नहीं जा सकता था! फलत, गाँव के कुछ और साथियो के साथ, एक रात भाग निकले और पटना सिटी पहुँचे। वहाँ एक दिन, पर्चे-वर्च बाँटते रहने के बाद, पटना सिटी कोर्ट पर तिरंगे को फहराने का भार आप पर आया और पकडे गये। फिर तीन महीने सीखचों के भीतर से हसरत भरी निगाह से, प्रकृति की दी हुई उन्मुक्त हवा, धूप, चाँदनी और नीले-फैले आसमान को देखते रहने के बाद छोड दिये गये। उसके बाद असहयोग का ज्वार भी घट चला था। इसलिये ये घर वापस चले गये। लेकिन शिक्षा प्राप्त करने की जो अदमित इच्छा थी, वह परीशान कर रही थी। सो एक दिन पिता श्री के धर्मग्रंथ में रखे दो दस-दस के नोटों पर आपकी जो निगाह पडी तो दूसरी रात, नोट भी गायब और आप भी! (आप यदि धर्म और धर्मग्रंथों में विश्वास नहीं करते तो देखिये, धर्मग्रंथ ने इनकी कैसी सहायता की!)

फतुहा पहुँचे। वहाँ नाम लिखवाना चाहा। शिक्षकों ने कहा, अक्टूबर में किस क्लास में नाम लिखा जाय, इसके लिये परीक्षा देनी होगी। दिन भर भूखे रहकर परीक्षा देने के बाद संध्या समय आपको

आठवी कक्षा के योग्य समझा गया। नाम लिखाकर जरा दम लिया था कि वार्षिक परीक्षा सर पर। लेकिन आये फर्स्ट। तब तक पिता जी भी मान चुके थे कि प्लेग के जमाने मे पैदा हुआ यह बालक उन्हें तब तक परीशान करता रहेगा जब तक वह पढ न जाग। निदान सहायता देनी स्वीकार की उन्होने। तब से इनका 'केरियर' सफलताओ से भरता गया।

फतुहा में एक हिदी साहित्यिक सस्था की, पढने के जमाने में ही, स्थापना की थी। राममोहन राय में पढते हुए 'सरस्वती' नामक हस्त-लिखित पत्रिका का सपादन किया। प्रवेशिका के बाद पटना कालेज में आइ० ए०, बी०ए०, और एम०ए० किया। बी०ए० में हिन्दी में प्रथम आने के लिये विश्वविद्यालय से एक स्वणपदक प्राप्त किया। एम० ए० में प्रथम श्रेणी में उत्तीण होकर सन् बयालीस (एक बार फिर आदोलन के समय म ही!) में आप कालेज के लिये अध्यापक नियुक्त हुए। तब से आज तक आपने बी० एन० कालेज, जी० बी० बी० कालेज और अब पटना कालेज में पढाया है।

श्री केसरी काव्य के मर्मज्ञ है और कवि भी। प्रयोगवादी कविताए कुछ ऐसी लिखी है, कि कवल उन्ही के सहारे आपकी चौका देनेवाली वुद्धि तीक्ष्णता और प्रतिभा के हम कायल हो सकते हैं। यो तो कहानियाँ, निबध आदि भी लिखे है। कुछ निबध तो पाठ्य-पुस्तको में भी पढाये जाते है।

ऐसे तत्वो का बना है श्री केसरी कुमार का व्यक्तित्व। अब आप मान गये होगे कि रोमाटिक और काव्यात्मक आपका व्यक्तित्व है। फिर गुजन के अध्ययन और उसका रसास्वादन कराने में यदि आप अनेको मे एक हो तो क्या आश्चर्य!

यह एक सतोप की बात है कि आजकल हिदी साहित्य में आलोचना-ग्रथो के मुद्रण की सख्या में यथेष्ट वृद्धि हो रही है। कहँ तो यह कि,

आलोच्य ग्रंथों की संख्या से आज आलोचना-ग्रंथो की संख्या कहीं अधिक है। निश्चय ही यह इस बात का द्योतक है कि हम अपने साहित्य के प्रति अधिक जागरूक होते जा रहे हैं। और इतना ही नहीं, परम संतोष की बात तो यह है कि इससे हम यह जान पाते है कि अपने साहित्य को समझने-परखने और उसमें एक पैठ पाने को, उसको और लेखको-कवियो का एक यथोचित स्थान निर्धारण और मूल्यांकन के लिये, हम कैसा स्तर निर्माण कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का महत्व इस दृष्टिकोण से और भी अधिक है। छायायुग के पंत का गुंजन कुछ इतना समय पहले लिखा जा चुका है कि समय की इस दूरी ने भी उसके मूल्यांकन के लिये एक परिदृश्य देने में सहायता की है। उस युग की स्थापनाओ और मान्यताओ पर हम आज अधिक तटस्थता और नवीन बौद्धिक और भावात्मक जागरूकता के साथ विचार कर सकने की परिस्थिति में हैं।

छायायुग का उत्कर्ष काल सन् १९१८ के बाद का है। या यो कहें कि प्रथम विश्व-युद्ध के बाद की अवधि में छाया-युग पल्लवित हो सका। आज का युग द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का और तृतीय की आशका से सशंकित है। हम मानें, न मानें, लेकिन इन दोनो युगो की अंतवृत्तियो की ओर ध्यान देने से ही यह तो स्पष्ट हो जाता है कि इन विश्वयुद्धोके बादके साहित्य में ये दो प्रकार की वृत्तियाँ मात्र समकालीन घटना (coincidence) नही। ऐसा मानना परिस्थिति और कलाकार के अनिवार्य अन्योन्याश्रय की अनदेखी करना होगा।

पल्लव-कालीन पंत की ये पंक्तियाँ——

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड कर आँखो से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान——

आज भी वय सधि पर आये पाठको को, या उनको जो अपनी वय सधि से, मानसिक वृत्तियो के रूप में, आगे नही बढ सके है, रोमाटिक अथच बडी सुदर भले ही मालूम पडें, विबुध पाठको की सम्मति इससे भिन्न नही हो सकती कि कवि चरित्र की प्रारभिक अवस्था की आज के लिये सभावना-पूर्ण ये पक्तियाँ है। हम जीवन की ठोस पीठिका पर खडे होकर जब देखते हैं तो पाते है कि पहला कवि न वियोगी था, और न कविता कभी अनजान बही है। और यह कि आँसू या हास ही यदि कविता हो तो मशीन की स्याही से काले अक्षरो में उनके लिखे जाने की कोई आवश्यकता ही नही होती। तात्पर्य यह कि कविता (साहित्य ही को कह लीजिये) बडी कृत्रिम चीज है---artificial---और कवि-क्रिया एक नितात बौद्धिक प्रक्रिया है।

इन्ही पक्तियो के सामने पल्लव के पत की कुछ और पक्तियाँ भी लू। देखिये---

हाय किस के उर में
    उतारूँ अपने उर का भार
किसे अब दू उपहार
    गूथ यह अश्रु कणो का हार।

यह 'हाय' और 'यह अश्रुकणो का हार' मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कवि को वय सधि से परे नही ले गया है। वह अभी भी वही पर खडा है। मन की इस अनायास ऊहा की मूल-प्रेरक-शक्ति क्या है ? कहने को हम कह सकते है कि यही एक विराट् सत्ता से अनभिज्ञ रहने के कारण उत्पन्न हुई चिरतन वेदना है। लेकिन यह व्याख्या, दलील जैसी भी हो, सत्य नही।

छायायुग का बीजाकुर, वस्तुत, किसी रहस्यमयता में नही हुआ, अपितु वय सधि के आवृत यौन और उस अवस्था की स्वाभाविक पलायन

वृत्ति के समन्वय से ही उसका बीजपात हुआ, और उसी के रस से सिक्त हो इसने पुष्टि पाई ।

गुजन के पत, पल्लव के पत के विकसित रूप है । पल्लव में जहाँ बाह्य प्राकृतिक उद्दीपन-साधनो से नयनो में अश्रुकण उमड पडते थे, और जहाँ उद्दीपन के उपादानो के प्रति न काव्यात्मक, न रहस्यात्मक, न वैज्ञानिक दृष्टिकोण था, प्रत्युत उनसे उद्भूत वय साधिक बेकली ही केंद्र बन सारी चेतना की माँग कर बैठती थी, वहाँ गुजन में भावात्मक स्वरति से इच्छा पूर्ति न होने के बाद वाली—'उन्मन, उन्मन'—अवस्था है । अब ध्यान प्राकृतिक उपादानो की ओर भी है, लेकिन फिर भी भीतर का मानस, उद्दीपित होकर भी, एक खोखलापन का अनुभव करता है । विकास का एक ही लक्षण यहाँ देखने को मिलता है—वृत्तियाँ आशिक रूप से अन्तर्मुखी भी है, बहिर्मुखी भी । इस प्रकार के सही विकास का पूणरूप तब होता है जब वृत्तियाँ बहिर्मुखी हो जाती है । निस्सगता और तटस्थता (objectivity) तभी आती है जो महान् साहित्य के अत्यावश्यक अग है । तभी साहित्य क्षणस्थाइत्व से चिरस्थाइत्व को प्राप्त करता है, और व्यक्तिगत होते हुए भी सर्वजनीनता प्राप्त करता है ।

पत जी के काव्य-जीवन का ऐसा विकास तो हुआ है—पल्लव, गुजन ग्राम्या, स्वण किरण, स्वर्णधूलि—लेकिन विकास-क्रम में पत के प्रारभिक कवि ने उनका साथ छोड दिया । उसका कारण भी स्पष्ट है । उनकी प्रारभिक भावुकता प्रथम युद्ध से उद्भूत नही थी, लेकिन द्वितीय युद्ध में, यद्यपि भारत सक्रिय रूप से उसमें सम्मिलित नही था, पत जी, एक व्यक्ति के रूप में, बौद्धिक रूप से सक्रिय रहे । (शायद कोई भी पढा-लिखा आदमी बौद्धिक रूप से सक्रिय होने से बच नही सकता था ।) फलत, बुद्धि ने उन्हें जिस ठोस परिपार्श्व में ला खडा किया वहाँ भावकता का मेल नही बैठ सका । और तब कविता दगा दे गई ।

तर्क और बुद्धि के आधार पर चिंतित (contemplated) विचार दर्शन है, भावात्मक रूपसे ग्रहण किया हुआ दर्शन काव्य है। एक अपनी प्रक्रिया में विश्लेषणात्मक है, दूसरी संश्लेषणात्मक। संश्लेषण की प्रक्रिया में तर्क के चरणों का हम बाद दे जाते है, लेकिन स्थापना और निष्कर्ष के बीच की बौद्धिक प्रक्रिया सिमट कर तो रहती ही है, कारण, आधार वही है। दर्शन में हम उसे ही खोलते और फैलाते चलते है। पंत की, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की, कविताएं त्रिशंकु की भाँति इन दोनों के बीच लटक गई है। निष्कर्ष बौद्धिक अथवा दार्शनिक है। क्रिया में संश्लेषण और विश्लेषण का उलझा हुआ एक जाल है।

इस का आभास हमें गुंजन से ही मिलने लगता है। और इधर कुछ दिनों पहले तक तो कवि एक विशिष्ट वाद (कम्युनिज्म) का अग्रगामी कवि था। गुंजन की इन पंक्तियों को देखिये---

जग पीड़ित रे अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से
या
आत्मा है सरिता के भी,

जिससे सरिता, सरिता। आदि। इनमें कौन-सा काव्य है? ये जिज्ञासा और समझौते की एक कड़ी जरूर है, लेकिन काव्यात्मा से विहीन। इनमें विचार की सूक्ष्मता और तीक्ष्णता भी नहीं जिससे ये बौद्धिक संतोष ही दे पायें।

कहने का तात्पर्य यह नहीं कि पल्लव के बाद से काव्य-रस से भीनी कविताएं इन्होंने लिखी ही नहीं। लिखी है अवश्य, लेकिन जहाँ वैसी कविताएं बन पाई है, वहा पंत जी फिर पल्लव के प्रारंभिक उपादानों की ओर ही लौटे है।

छायायुग की सब से बड़ी कमजोरी, उसकी रहस्यमयता की भावना पर आस्था के अतिरिक्त, यह रही है कि उसने अगूर की सत्ता की तो अन-

देखी कर दी, लेकिन रस को सत्य माना । और, उस सत्य की अभिव्यक्ति करने में, उसे पाठको तक प्रेषित करने में ही, छाया-कवियो ने अपनी काव्यात्मक क्षमता को चुका दिया। आधुनिक युग के महान कवि टी०एस० इलियट ने काव्य में (साहित्य में ही) objective correlative की माग की है । छायायुग के काव्य में यह एकदम से अनुपस्थित है ।

छायायुग का अतृप्त और प्रच्छन्न योन, मीरा के प्रेम-काव्य और कबीर के रहस्यवाद की दुहाई दे-देकर चलता रहा है । लेकिन मीरा के कृष्ण न निराकार थे, न कबीर का रहस्य योग के अगो से हीन ।

'मुर्शिद नैनो बीच नबी है' अथवा 'रस गगन गुफा में अजर झरै' आदि में क्या हम वही पढते है जो इनमें—'राग भीनी तू सजनि, नि श्वास भी तेरे रगीले', अथवा 'निशा को धो देना राकेश' आदि में या 'तप रे मधुर-मधुर मन' में । 'म्हाने चाकर राखो जी' या 'अब तो बात फैल गई जाने सब/कोई' की तरह की साहसिक पक्तियाँ छायायुग के किसी कवि के मुह से निकल सकी है ? (एक मात्र निराला को छोडकर और कोई नही ऐसा कह सका । देखिये—निष्ठुर उस आली ने निपट निठुराई की कि झोको की झडियो से झकझोर डाले कोमल गात, आदि ।)

इस प्रकार छाया-युग और उसके कवियो के विषय में बहुत कुछ हमें जानना-समझना और परखना है । और इसलिये फिर दुहराऊँ कि श्री केसरी कुमार इसके लिये एक अत्यत समर्थ व्यक्ति होगे । जो स्वयम् उच्च कोटि की कविताए लिख सकता है, तीक्ष्ण आलोचक हो सकता है, उससे यदि हम छाया युगीन कवि पत के गुजन के प्रति न्याय की आशा नही करें तो किससे करें । श्री केसरी कुमार की कविता, 'बोधि वृक्ष' की इन दो पक्तियो से हो हम जान सकते है कि काव्य की आत्मा की उनकी परख और पकड कैसी हो सकती है ।

'मागते ताम्र
बाँटते मुक्ति

बोधि वृक्ष की ये अंतिम, कविता को बंद करने वाली पंक्तियाँ है।

प्रस्तुत पुस्तक में पंत के व्यक्तित्व और विकास, छाया युग की वृत्तियाँ और गुंजन पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। अच्छा होता, वर्तमान युग की काव्य वृत्तियो और कुछ कवियो का छायायुग और पंत से तुलनात्मक अध्ययन का एक परिच्छेद भी जोड दिया जाता। फिर भी मैं अत्यंत विश्वास से कह सकता हूँ कि इस पुस्तक को एक बार हाथ में लेने के उपरांत पाठक ऐसा नही समझ सकेंगे कि उनका समय अन्यथा नष्ट हुआ।

कदमकुआँ पटना
७–५–'५०

श्री नरेश

विपयानुक्रम

छायावन की रास

कहते है, 'दूर उन खेतो के उस पार, जहाँ तक गई नील झनकार,' एक छायावन था। दगन की किरणो से उसे सजाया गया था। आम्र, पीपल और वेणुवृक्ष उसके प्रहरी थे। बीच में एक केलि-कुज था। वही पल्लव पर्यंक पर एक प्रतिमा लेटी थी। उसकी भवो में भगिमा और नयनो में पचशर के बाण थे। उसके ओठा में अमृत और हृदय मे प्यार था। पर उसकी गिरा में लाज और प्रेम में मान की मर्यादा थी। सूरज उसके पाँवो में जावक लगाता था, रात उसकी आँखो में काजल डालती थी। यह आज भी विवादास्पद है कि वह तापसकन्या थी या रतिबाला। पत के लिए वह नवयुग की रम्भा थी और निराला के अनुसार वह अतीत की शकुन्तला थी जो दुर्वाशा आलोचको से अभिशप्त होकर दूर चली गई थी। तब द्विवेदी युग की वह आचारपूत धरती जल रही थी जिसने रतिशास्त्र को अग्निसात् किया था और शृगार तथा विलास को वर्जित प्रदेश (Forbiddenland) मान लिया था। उसीसमय मध्यवित्त वर्गमें कुछ नवशिक्षत तरुण जो रगीनियो के बीच पले और स्कूल-कौलेजो में हीगल के सौदर्य-वाद और अग्रेज रोमाटिक कवियो के स्वच्छादानुराग से अभिभूत हुए थे, उस वर्जित प्रदेश का बडी हसरत से देख रहे थे। उमरखैयाम को रूबाइयो और रवीन्द्र के 'सब-पेयेछिर देशे' में उनकी चाहने एक राह ढूढ ली। समय का हर-नेत्र बचाकर, प्रकृति और अध्यात्म की ओट ले, तथा कल्पना के सेतु पर चढकर वे उस छायालोक में गए थे। कहते थे, हम वनदेवो की उस अनन्त रास में सम्मिलित हुए है जो दिन-रात चला करती है और जिसमें सीमा असीम का आलिगन करती है। पर लोगो को विश्वास न हुआ था क्योकि तब आध्यात्मिक रग के चश्में सस्ते न थे और अनेक कवि घर के पास कायिक रोमास के लिए बदनाम थे। वे स्वय भी धरती की गध में लौट आए। आज वह छायावन फिर उदास हो गया है। पर कुछ लोगो का

ख्याल है कि वहाँ वह पारिजात भी था जिसके फूल कभी मुरझाते नही।

महादेवी जी कहती है कि 'छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त्त और अमूर्त्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है, बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखडता का भावन किया, हृदय की भावभूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौदयसत्ता की रहस्य-मयी अनुभूति की और दोनो को मिलाकर एक ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद आदि अनेक नामो का भार सँभाल सकी।' उनका यह कथन सत्य भी है और असत्यभी। सत्य इसलिए कि छायावाद को प्रकृतिवाद, अध्यात्मवाद, रहस्य-वाद आदि नाम मिले। असत्य इसलिए उसमें इन मतवादो के सत्य का विकास न हो सका। प्रकृति को एक स्पदित व्यक्तित्व तो दिया गया, उसके अतस की अमियधार में अवगाहन की चेष्टा तो की गई, उसमें एक अमूर्त्त सत्ता के विराट् रूप के दर्शन का प्रयत्न तो किया गया पर साहचर्य की खुली आँखो से उसे देखा न गया जो प्रकृति-चित्रण की सबसे बडी शर्त है। सबने प्रकृति में अपनी 'प्रवृत्ति का प्रतिरूप' देखा। अनेक स्थानो पर प्रकृति को उनकी निजी मान्यताओ का बेगार करना पडा है। छायावाद को प्रकृतिवाद का पर्याय माननेवाली महादेवी ने 'साध्यगीत' में कोमल पक्तिया कही है —

तारक लोचन से सीच-सीच, नभ करता रज को विरज आज,
बरसाता पथ में हर सिंगार, केशर से चर्चित सुमज-लाज,
कण्टकित रसालो पर उठता है पागल पिक मुझको पुकार !

बसन्त की इस अलस-मदिर साझ में हम उनके अनुराग को समझते है, कुछ उनकी उत्कठित विकलता को भी। परमपुरुष से मिलने के लिए प्रकृतिस्वरूपा होकर उनका जाना भी उचित है। सबठीक है, सब वाजिब है, पर इस भरे बसन्त में जब आम की डालियाँ मजरियो से लद गई है और अमराई में कोयल बोल रही है तब शरतऋतु में विशेष रूप से खिलने-वाला हरसिंगार इतने फूलो का लावा कैसे छीट रहा है ?

पंत जी की 'चाँदनी' की —

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनि
मृदु करतल पर शशि-मुख धर
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !

वह सोई सरित-पुलिन पर
साँसों में स्तब्ध समीरण
केवल लघु-लघु लहरों पर
मिलता मृदु-मृदु उर-स्पन्दन !

—आदि पंक्तियों में चित्र की असम्बद्धता और दुरान्वयता सहज में ही देखी जा सकती है। रात में कमल का खिलना, आकाश की नीलिमा के नीचे रहनेवाली चाँदनी का आकाशरूपी नीलकमल के ऊपर बैठना और आकाश में सर रखकर सरित-पुलिन पर उसका सोना सबकुछ अद्भुत है।

बात यह है कि प्रसाद जी नारियल गली में 'कामायनी' लिख रहे थे, महादेवी जी तसवीरों से सजे कमरे में 'सान्ध्यगीत' रच रही थी और पंत जी सपने में रवीन्द्रनाथ का काव्य चित्र देख रहे थे।

महादेवी जी की प्रायः प्रत्येक कविता में प्रकृति की पृष्ठभूमि मिलेगी पर उसमें न तो एकतान समग्रता है और न कोई नवीनता या विशिष्टता।

किसी नक्षत्र लोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात।
ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद
तरल मोती-सा ले मृदु गात
नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान !

अथवा,

स्वर्ण-वर्ण के दिन से लिख जाता, जब अपने जीवन को हार
गोधूली नभ के आँगन में देती अगणित दीपक वार।

यह सब कुछ अत्यत साधारण है । हर भोर और हर साँझ म द्रष्टा के लिए जो नया रूप, नयी रागिनी या नया सदेश रहता है उसका दर्शन हम महादेवी में नही करते । इसका कारण यह है कि वे अपने विचारो में बाँधकर सूर्य, चन्द्र, आकाश, उदधि, किरण, वायु को अपने वाङ्मय उतारती है । प्रकृति में उनका मन रमता नही है, इसलिए उनके दृश्य जगत् मे एक साधारणपन है । एक-आध ऐसी जगह भी है जहाँ उन्होने नवीन कल्पना तो की है पर वह पाठक के 'सौदय सस्कार के प्रतिकूल' पड गई है ।

पत जी कहते ह कि कविता करने को आदि प्रेरणा उन्हें प्रकृति से मिली है जिसका श्रेय उनकी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश और कालिदास की अमर प्रकृतिगीति मेघदूत को है और हम मानते है कि पत जी में लाघव के साथ कोमल प्रकृति के सहज चित्रण की विपुल सामर्थ्य है । वर्डसवर्थ की भाँति उन्होने भी प्रकृति के शात-कोमल श्यामलाचल में बैठकर मर्म की वाणी कही है और उनके 'साध्यतारा' की तुलना वर्डसवर्थ के 'Westminster bridge' से की जा सकती है यद्यपि इसमें पत जी का विशेष गौरव नही है क्योकि 'पत्रो के आनत अधरो पर सो गया निखिल वन का मर्मर' बहुत ऊँची पक्ति है, पर वर्डसवर्थ और पत में एक मौलिक अतर है । वर्डसवर्थ की प्रकृति दृष्टि का विषय है, पत की अनुभूति का । वर्डसवर्थ प्रकृति के व्यक्त स्वरूप की वर्णना बडे मनोयोग से करते है किन्तु पत के लिए वह —

खडी दृगो के सम्मुख
सब रूप रेख रग ओझल
अनुभूति मात्र-सी उर में
आभास शान्त शुचि उज्ज्वल !

प्राय छायावादी कवि न तो आत्म विभोर होकर प्रकृति का निरीक्षण कर सके और न आत्मसमर्पण द्वारा सकेत-ग्रहण ही । वे अपनी कल्पनाओ के रग में प्रकृति को रग देते है और कही २ दार्शनिक भावो से उसे युक्त कर देते है और तब प्रकृति का सहज सौदय मर्माहत होकर मुरझा जाता है ।

रहा अध्यात्म या दर्शन। सो वह छायावाद का सब से कमजोर पहलू है। अध्यात्म के लिए जिस श्रद्धा और विश्वासपूर्ण साधना की अपेक्षा होती है वह उनके पास न थी। वाणी और कर्तृत्व के अनैक्यके कारण उनका अध्यात्मवाद विश्वसनीय नहीं था और इस असंगति ने उस समयके अखबारों में कार्टूनों के लिए काफी मसाला दिया था। बाद में वे स्वयं भी भौतिकता से समझौता करने लगे। उनके सैद्धांतिक अध्यात्म का परीक्षण आज भी उसे काव्यप्रसाधन ही मानने को बाध्य करता है। महादेवी वर्मा की 'बीण भी हूँ, रागिणी भी हूँ, दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ' एक सुन्दर भावपूर्ण गीत है और निराला की 'तुम और मैं' शीर्षक कविता वेदांत के अद्वैतवाद और शंकराचार्य के सिद्धांतों का प्रतिपादन करती है और इस कारण उसका काव्य सौंदर्य भी एकरसता में पड़कर किंचित मलिन हो गया है। पर निराला की उसी कविता की प्रतिध्वनि और शैली में जब महादेवी जी कहती है कि—

मैं कम्पन हूँ, तू करुण राग
मैं आंसू हूँ, तू है विषाद,
मैं मदिरा तू उसका खुमार
मैं छाया तू उसका अधार
मेरे भारत मेरे विशाल

(यामा)

तो हम भौंचक रह जाते हैं। ब्रह्म की अद्वैतानुभूति की बात समझ सकते हैं पर स्थूल पर अद्वैत का यह आरोप, देशभक्ति के साथ शराब और खुमार का यह रूपक तो अध्यात्मवाद की एक पैरोडी-सा लगता है। दुर्वासा आलोचक (!) शुक्ल जी के इस कथन में भी कुछ वजन था कि छायावाद अभिव्यंजना की एक शैली था। पंत जी के 'मौन निमंत्रण' के साथ जब हम महादेवी जी की —

कुमुद-दल के वेदना के दाग को,
पोंछती जब आंसुओं से रश्मियां,

चौंक उठती अनिल के विश्वास छू
तारिकाएँ चकित-सी अनजान-सी
तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के सगीत-सा वह कौन है ?
शून्य नभ्थर उमड जब दु खभार सी
नैश तक मे, सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओ की पाति भी
जब सुनहले आसुओ के हार सी,
तब चमक जो लोचनो को मूदता,
तडित् की मुस्कान में वह कौन है ?

—आदि पक्तियो को जब हम पढते है तब स्वतत्र चितन का अभाव शलीवाली बात को और पुष्ट करता है ।

महादेवी जी ने अपने को एक चिरविरहिणी की भूमिका में रखा है । इसलिए कहा जा सकता है कि उनका दु खवाद आध्यात्मिक है । यह तो निर्विवाद है कि महादेवी जी की कविताओ में सर्वत्र शून्यता और निर्जनता है । पर आध्यात्मिक एकाकीपन तो चितन की सबसे बडी समाधि होता है । एकातवासी योगी जीवन के रहस्य का उद्घाटन करता है । अकेले में साधारण आदमी भी अपनी समस्याओ का निदान ढढता है । महादेवी की एकातता में यह चितन, मर्म का यह बोल, रहस्य का यह उद्घाटन कहाँ है ? रवीन्द्रनाथ के 'सध्या सगीत' में निरुद्ध अवस्था की जो अधीरता है वह 'साध्यगीत' में कहाँ है ? रवीन्द्र में सर्वानुभूति है, महादेवी में एकान्तानुभूति । यहाँ मात्र शून्यना है, केवल आँसू है । और ये आँसू भी कितने सस्ते है । महादेवी में कबीर और मीरा की वह वेदना नही है जो हृदय की शिराओ को कपा देती है । मीरा की वेदना जीवन-प्रसूत है, महादेवी की कल्पा-प्रसूत । झूमझूम कर वेदनाओ का प्याला पीनेवाली महादेवी के रुदन में 'आमोद है, निरोध नही' । इस प्रकार सत्ता, समस्या और चितन के अभाव में आपकी वेदना हमारी की सवेदना नही पाती ।

प्रसाद जी आरम्भ से अत तक कवि रहे। आप म अध्यात्म के प्रति वैसा दुर्दांत आग्रह नही। निराला ने कही २ बडी कठोर दृढता से उसका पल्ला पकडा है। पर उनके काव्य का लौकिक पक्ष कम भारी नही है। और सचतो यह कि इन दोनो कवियो का कवित्व दूसरे पक्ष में ही प्रगट हुआ है।

छायावादी पत ने हिन्दू अध्यात्मवाद और वर्गसा के जीव-चैतन्यवाद महात्मा बुद्ध के मध्यम मार्ग, रवि ठाकुर की बधन-मुक्ति और वर्डसवर्थ के प्रकृति-सिद्धात का समन्वयकर एक नूतन दर्शन गढना चाहा, पर उनके इस जीवन-दर्शन की रीढ नही दिखाइ पडती। उसका कोई निजी व्यक्तित्व नही है। उनके दर्शन में अनेक विवादीसुर सुनाई पडते हैं। कही वे ससार को सुखमय मानते है, कही दुखमय और और कही सुख-दुख-समन्वय को ही ससार का अटल नियम मानते है। कही हिन्दू विचार धारा में अवगाहन करते हुए कहते है कि सारा विश्व ही ईश्वर की माया है। तो कही वडसवर्थ का अनुसरण करते हुए कहते हैं कि ससार में केवल मानव दुखी है पर प्रकृति सुखी है। मनुष्य ने स्वय अपने को प्रकृति से अलगकर दुखी बना लिया है। अत मनुष्य को जीवन की सीख प्रकृति से लेनी चाहिए।

इस प्रकार अध्यात्म छायावादी कवियो का प्रकृत क्षेत्र नही है।

छायावाद मूलत प्रेम-सौदर्य-काव्य है। यही इसका प्रकृत रूप है और इसी रूप में इसका मूल्याकन होना चाहिये। छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नही है क्योकि उसमें अनेक मासलताएँ है। वह सघर्ष की हार से उत्पन्न भी नही है क्यो कि उसके जन्मकाल में आर्थिक सकट उतना तीव्र नही था। वह द्विवेदी काल की शुष्कता के प्रति रसिकता की प्रतिक्रिया है। छायावाद खडी बोली में सौन्दर्यभावना के पुनरुत्थान (Asthetic Revival) का पहला युग था। छायावादके सभी कवि सौदर्यजीवी थे। उनके काव्य में असुन्दर के लिए स्थान नही है। 'कुत्सित कुरूप' में रूप-निर्माण करने की प्रवृत्ति परवर्त्ती है। उनमें सौदर्य की एक वुभुक्षा-सी

है। अपनी सौंदर्य-बुभुक्षा की परितृप्ति के लिए एक ओर उन्होंने मधुवन की ओर देखा है और दूसरी ओर 'निखल छबि की छबि' नारी की ओर। उनकी चिंता के केन्द्र में नारी बैठी थी। नारी उनके सौंदर्य की सीमा थी। उनके उपचेतन ने प्रकृति में नारी का ही यौवन-विलास और विरहदैन्य की छाया देखी है। पंत ने उसकी वय संधि की धूप-छाँह को, प्रसाद ने उसके यौवन-विलास को, निराला ने उसकी रति-क्रीडा और शक्ति को तथा महादेवी ने उसकी अतृप्त वेदना को वाणी दी है। उनकी इस नारी की भी एक सीमा थी पर यह वह सीमा न थी जिसका वर्णन रवीन्द्र नाथ ने 'वाणी' में इस प्रकार किया है —

'बूंद-बूँद वर्षा के रूप में आकाश के बादल धरती पर उतरते हैं—धरती को पकडाई देने के लिए। ऐसे ही कही से स्त्रियाँ आती हैं, पृथ्वी पर—बंधनों में बंधने के लिए। उनके लिए कम जगह की तंग दुनिया है—थोडे आदमियों की। उतने ही में उनका अपना सब कुछ अँट जाना चाहिए—उनकी सब बातें, सब व्यथाएँ, सब चिन्ताएँ। इसी से उनके सर पर घूँघट है, हाथों में कंकण है, घर में आँगन का घेरा है। स्त्रियाँ सीमा-स्वर्ग की इन्द्राणी हैं। भला, किस देवता के कौतुक-हास्य की तरह अपरिमित चंचलता के लिए हुए, हमारे मुहल्ले में, उस छोटी-सी लडकी का जन्म हुआ? वह भागते हुए झरने का पानी है, शासन के कंकड-पत्थरों को लाँघ-लाँघकर चलती है। उसका मन मानो वेणुवृक्षकी ऊपरकी डाली का पत्ता है। हमेशा झर झर काँपता रहता है। आज देखूँ तो वह लडकी छज्जों की मुँडेरे पर झुककर चुपचाप खडी है—वर्षाशेषके इन्द्रधनुष की तरह।

नदी मानो चलते-चलते एक जगह ठिठक कर सरोवर हो गई है। आदियुग में सृष्टि के मुंह से पहली बात निकली थी जल की भाषा में, हवा के कंठ से। लाखों करोडों युग पार होकर उस स्मरण-विस्मरण की अतीत बात ने आज वर्षा बादल के कलस्वर में उस लडकी को आकर पुकारा।

इसी से वह बडी बडी आँखें खोलकर निस्तब्ध खडी रही,—मानो अनन्तकाल की ही प्रतिमा है वह।'

छायावाद की नारी भी सीमा की रानी है। पर वह सीमा सयम ओर निरोध की नही, उम्र की है। वह पूर्ण नही अर्द्धनारी है––किशोर ओर यौवन की। प्रसाद जी ने छायावाद की व्याख्या इस प्रकार की है––"कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जा भूषण की तरह होती है, ध्यान रहे कि यह साधारण अलकार जो पहन लिया जाता है वह नही है, किन्तु यौवन के भीतर रमणी सुलभश्री की बहिन ही है, घूघटवाली लज्जा नही।' मेरे ख्याल में छायावाद की यह प्रकृत व्याख्या है।

हिन्दी के छायावाद में रवीन्द्र की नारी की 'शेषेर उक्ति' नही है, 'विहग बालिका' और 'मदिर नयना यौवना' का प्रेम-निवेदन है। रवीन्द्र का प्रेम-क्षेत्र व्यापक है। उनमें कुरूप नायिका का भी लज्जासुलभ प्रेम-निवेदन है––

जार नवीन सुकुमार कपोल तल
कि शोभा पाय प्रेम लाजेगो।
जाहार ढलढल नयन शतदल
तारेइ आखी जल साजेगो।
ताई लुकाये थाकी सदा पाछे से देखे,
भालो बासिते मरी सरमे।
रुधिया मनोद्वार प्रेमेर कारागार
रचेछि आपनार मरमे।

'जिसके कपोलतल नवीन ओर सुकुमार है, प्रेम की लज्जा से उसकी कितनी न शोभा होती होगी। जिसके नयन शतदल डबडबाये हुए ही बने रहते है, आँसू बस उसे ही सजते है। वह मुझे कही देख न ले, इस भय से मैं सदा छिपी रहती हूँ। प्यार करने को (क्या कहूँ) लज्जा से ही मरी रहती हूँ। मन का द्वार बन्द करके, मैंने अपने मर्म के भीतर प्रेम का कारागार रचा है।'

छायावाद का जन्म लौकिक प्रेम से हुआ है। हम रामनरेश त्रिपाठी के प्रेम-काव्यो की चर्चा नही करते, जिनमें कुछ लोग जाने कैसे छायावाद का आदि-सूत्र देख लेते है। हम तो छायावाद के सम्मानित प्रजापतियो

की कहते है जिनमें अनक एसे थे जिनके जीवन का प्रेम-चक्र काव्य में मूल स्वर बननकर उतर आया है। लौकिक प्रेम, छायावाद के आदि प्रजापति जयशकर प्रसाद की कविता की सबसे प्रमुख विशेषता है। कानन-कुसुम से कामायनी के अतिम अध्याय तक वे जीवन को सौदय प्रेम और करुणा के माध्यम से देखते रहे। प्रेम-पथिक में वे प्रेम की अनोखी राह के पथिक हुए हैं जिस पर भूल-भूल कर चलना पडता है, जिसके ऊपर घनी छाँह होती है और जिसके नीचे काँटे बिछे रहते है। 'आँसू' और 'लहर' इसी प्रेमपरम्परा की करुण रागिणियाँ हैं। आँसू अध्यन के लिए दर्शन के सहाय्य की आवश्यकता नही। प्रसाद के आरम्भिक प्रेम-चिंतन पर उर्दू-शैली का प्रभाव भी स्पष्ट है —

सरासर भूल करते है उन्हें जो प्यार करते है
बुराई कर रहे है और अस्वीकार करते है
उन्हें अवकाश ही रहना कहाँ है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते है यही उपकार करते है

(इन्दु)

यह वह गजल है जहाँ से प्रसाद जी ने आरम्भ किया था। इन पक्तियो में अभिव्यक्त प्रेमी की विफलता और प्रेमिका की निष्ठुरता को पृष्ठाधार के रूप में ध्यान में रखें। कहा जा सकता है कि छायावाद का आरम्भ तो इन पक्तियो में नही, उन पक्तियो में है जहाँ प्रसाद जी ने नाविक से भुलावा देकर उस प्रदेश म ले जाने का आग्रह किया है—

जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानो में गहरी—
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अपवनी रे। १

---

१ तुलना कीजिए—

दरिया का किनारा हो या कोह का दामा हो
या वादि हो सुनी सी सुनसान बयाबा हो

हमारा निवेदन होगा कि यह छायावाद का आरम्भ नही, विकास है जहाँ प्रेमी प्रेम-व्यापार की असफलता से ऊबकर कुछ क्षणो के लिए विस्मृति अथवा कल्पना की दुनिया में अपने को उडा ले जाना चाहता है। और, इसकी परिणति तो कामायनी की उस पंक्ति में हुई जहाँ नारी कहती है --

तुमुल कोलाहल कलह में मैं हृदय की बात रे मन !

हाँ, प्रसाद का अतरिक्ष-प्रदेश हृदय का देश है, 'कबिरा का देस' नही 'जहाँ रैन ना होय'। 'हृदय की बात' उनके छायावाद का मूल उत्स है।

'प्रेम की बाहो में' मुक्ति पानेवाले, और पुंलिग शब्दो का स्त्रीलिंग प्रयोग करनेवाले कोमल-प्राण पंत जी ने प्रकृति और नारी के सम्मोहन को किशोर वृत्ति कहा है और यह भी दावा किया है कि पल्लव और गुंजन के बीच उनका 'किशोर भावना का स्वप्न' टूट गया। यदि ऐसा होता तो हम दुर्भाग्य ही समझते, पर ऐसा न हुआ और नारी का सम्मोहन 'वीणा' से 'स्वर्णधूलि' तक एकरस बना रहा। 'वीणा' में प्रकृति से नारी की ओर जाते हुए उन्होंने एक असमंजस का अनुभव किया था।

छोड द्रुमो की शीतल छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले ! तेरे अलक-जाल में कैसे उलझा दू लोचन ?
भूल अभी से इस जग को !

दुनिया से परे और दूर एक शहरे खामोशा हो
आये न नजर कोई ऐ इश्क वहा ले चल
महफूज जहा हूँ मैं उल्फत की बलाओ से
माशूक के गम्जो से और उसकी अदाओ से
गैरो की जफाओ से और अपनी वफाओ से
जी चाहे जहाँ तेरा ऐ इश्क वहाँ ले चल।

--कविवर 'नाशाद'

इन पक्तियों की आलोचना करते हुए निराला ने कहा था कि बाला को छोडकर प्रकृति की ओर जाने में पत जी अपनी कला मे विपरीत रति करा रहे है। पर 'वीणा' के बाद ही 'ग्रथि' निकली जो कितनो की नगर मे उनकी अपनी प्रेम-ग्रथि थी जो सामाज के सशय के कारण खुली नही। प्रेम की यह पीर 'पल्लव' तक चलती है। 'गुजन' में एकबार फिर सयोग के मादकतार वजने लगते है। हाँ, लोकिकता के परिहार के लिए यहा नारी का वडे बडे विशेषण दिये गये है। प्रकृति के उपादानो से उसे सजाया गया है। कही उसे दृष्टि से अनुभूति के क्षेत्र मे खीचा गया है। कही शेली की भाँति उसे एक सौदर्य भावना (Spirit of beauty) के रूप में देखने का प्रयत्न किया गया है।

पर य सभी प्रयत्न एक झिलमिल झरोखा ही बना सके जिसके भीतर से धरती की काति लाख-लाख बार बाहर झाँकती है। वर्डसवथ की यह पक्ति बडी चुस्त बैठनी है —A spirit and a woman too

निराला ने अपेक्षाकृत नारी का चित्रण कम किया है पर उनकी नारी की स्नायुएँ औरो की अपेक्षा अधिक मॉसल भी है। 'शूपनखा' की मासलता तो छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया मानने वालो के लिए एक चैलेंज है। विनयकुमार सरकार का यह कथन कि—

The earthly elements, the pleasures of senses are too many to be ignored

—न केवल विद्यापति के लिए वरन् सभी छायावादी कवियो के लिए समान भाव स लागू होता है।

पर क्या इसका यह मतलब हुआ कि छायावाद के रूप में रीतिकाल फिर आ धमका था ? रीतिकाल का विरोध सभी छायावादी कवियो ने एक स्वर से किया है। प्रसादजी ने तो ब्रज के साथ अवधी की एक विशेष धारा का भी विरोध किया है।

"धर्म की आड मे नये-नये आदर्शों की सृष्टि, भय से त्राण पाने की दुराशा ने इस युग के साहित्य में, अवधीवाली धारा में मिथ्या आदर्शवाद और ब्रज की धारा में मिथ्या रहस्यवाद का सृजन किया।

मिथ्या आदर्शवाद का उदाहरण---

जानत न अधम उधारन तिहारो नाम, और की न जानें पाप हम तो न करते ।

मिथ्या रहस्यवाद---

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावत ।"

नही जानते, प्रसाद जी, इस रहस्य के निष्कष पर कैसे पहुँचे ? शायद वे रीतिकाल से छायावाद का पार्थक्य स्थापित करना चाहते थे । उनकी दृष्टि में 'रीति कालीन प्रचलित परम्परा से---जिस में वाह्यवर्णन की प्रधानता थी---इस ढग की कविताओ में भिन्न प्रकार के भावो की नये ढग से अभिव्यक्ति हुई ।' (भाव और शैली-दोनों की भिन्नता) निराला ने 'काव्य साहित्य' तथा 'बिहारी और रवीन्द्रनाथ' शीर्षक निबधो में बिहारी के व्याज से रीति काल पर आक्षेप किया है और कहा है कि वह हर चीज को खुलासा कर देता है और उसमें डूबता भी नही ।

"बिहारी तटस्थ रहते है, रवीन्द्र डूब जाते है । बिहारी चित्रण कुशलता दिखाने की फिक्र में रहते है, परन्तु रवीन्द्रनाथ अपने विषय से मिल जाते है ।"

पत की आलोचना सब से कठोर है ।

'पर उस व्रज के वन में झाड-झखाड करील-बबूर भी बहुत है । उसके स्वर में दादुरो का बेसुरा-आलाप, उसके कृमिल-पकिल गर्भ में जीर्ण अस्थि-पजर, रोडे, सिवार और घोघो की भी कमी नही । उनके बीचो-बीच बहती हुइ अमृत-जाह्नवी के चारोओर जो शुष्क कर्दममय बालुकातट है, उसमे विलास की मृगतृष्णा के पीछे भटकते हुए अनेक कवियो के अस्पष्ट पद-चिह्न, कालानिल के झोको से बचे हुए, यत्रतत्र बिखरे पडे है । उस व्रज की उर्वशी के दाहने हाथ में अमृत का पात्र, और बायें में विष से परिपूर्ण कटोरा है, जो उस युग के नैतिक-पतन से भरा छलछला रहा है । आह, उस पुरानी गूदडी मे असख्य छिद्र, अपार सङ्कीर्णताएँ है ।

"शृगार-प्रिय कवियो के लिए शेष रह ही क्या गया ? उनकी अपरिमेय कल्पना-शक्ति कामना के हाथो द्रौपदी के दुकूल की तरह फैलकर

'नायिका के अग-प्रत्यग से लिपट गई। ऐसी विश्वव्यापी अनुभूति ! ऐसी प्रखर-प्रतिभा ! एक ही शरीर-यष्टि मे समस्त-ब्रह्माण्ड देख लिया !

"हम ब्रज की जीर्ण-शीण छिद्रो से भरी, पुरानी छीट की चोली नही चाहते, इसकी सकीण कारा में बन्द हो हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रुक जाता है। यह नकाव पहना हुआ हास्यापद चेहरो का नाच हमारी सभ्यता के प्रतिकूल है।"

इस सिलसिले में उन्होंने भक्ति काल की शकीर्णताओ का भी वर्णन किया है। शायद वे एक ही साथ कविता को भक्तिकाल की सकीणता और रीतिकाल की स्थविरतासे मुक्त करने की लालसा रखते थे। वे काव्य में बोधा ओर द्विजदेव, बिहारी और केशव की अलख न जगाकर वडसवर्थ, शेली और कीट्स को पुनर्जीवित करना चाहते थे।

यो रीतिकाल ओर छायायुग में अन्तर है। रीतिकाल की नारी उस चमत्कारवाद की वादी थी जिसे तत्कालीन दरबारी सस्कृति ने काव्य मे खडा किया था। उस चमत्कारवाद की रक्षाके लिए उसे अनेक अप्राकृतिक भूमिकाओ मे उतरना पडा था। बिहारी के रूपक को सागोपागता के लिए नारी को साक्षात् रसायनशाला बनना पडा था और सेनापति के अभग और सभग श्लेषो की सगति वैठाने के लिए उसे कही कामदेव की फुलवारी बनना पडा था, कही पगडी, कही शतरज ओर कही चौपड। काव्य के इस आयाम में हम जीवित नारी के व्यक्तित्व का आभास नही पाते। छायावाद के केन्द्र में जो नारी बैठी थी वह हृदय के स्पदन और धडकन से युक्त नारी थी। काव्य को, उस नारी के श्रृ गार के लिए स्वय रूप सवारना पडा था, उसे अपने छदो में, भाषा और शब्द में नये गीत, चित्र और झकार लानी पडी थी। रीतिकाल में नारी का मापदड रीतिशास्त्र था, छायावाद में मनोविज्ञान और कामशास्त्र। रीतिकाल में मात्र कल्पना है, छायावाद में कल्पना और अनुभूति ने नारी भावना को नवीन सजीवता

दी है। रीतिकाल का सौंदर्य एक देशीय है, छायावाद का सार्व-देशिक ।

रीतिकाल के प्रति उनके विकर्षण को हम रवीन्द्र और रोमांटिक कवियो के प्रभाव ओर द्विवेदी युग की पृष्ठ-भूमि में समझ सकते है जब रीतिकाल साहित्य का एक गर्हित अध्याय बन चुका था। स्वभावत छायावादी कवियो का प्रेम उस ओर जाना नही चाहता था और एक नवीन बधनमुक्त ससार की खोज कर रहा था ––

चाहता है यह पागल प्यार
अनोखा एक नया ससार

––महादेवी

पर उसी समय पत जी के मन में दो शकाएँ उठी थी––

(१) **अनिल कल्पित कमल कोमल गात को**
अङ्क भरकर रसिक किसकी चाह की
बाँह तृप्त हुई

(२) 'समस्तदेश की वासना के बीभत्स समुद्र को मथकर इन्होंने (रीतिकालीन कवियो ने) कामदेव को नव-जन्म दान दे दिया, वह अब सहज ही भस्म हो सकता है ?'

और पत जी की ये दोनो शकाएँ ठीक निकली। कल्पित ससार में छायावादी कवियो को सतोष न मिला। धीरे-धीरे वे समतल भूमि पर उतर आए। काम उनपर विजयी हुआ। निराला' ने रीतिकाल की छद, भाषा और अलकार सम्बन्धी रूढियो को तो बडे साहस और सफाइ के साथ तोडा पर प्रकृति-चित्रण करते समय उन्होंने रीतिकाल की समस्त-नायिका भेद-प्रणालीको उतार दिया। मुग्धा, वासकसज्जा, आगतपतिका, ज्ञात-यौवना, अज्ञात-यौवना आदि सभी नायिकाओ को आप वहाँ ढूढ ले सकते है। पर उन्हे छोडिए। उन्होंने तो 'पल्लव' की आलोचना में रीति-काल का समर्थन भी किया है और 'बगाल के वैष्णव कवियो की शृगार वर्णना' शीर्षक निबध में बडी रसिकता के साथ कहा है कि 'आजकल जो

नग्न सौदर्य के दर्शन से क्रमश अतृप्ति बढती जा रही है, लोगो की दृष्टि में चातक की तृष्णा समा रही है, देखिए, पहले भी नग्न सौदर्य के तृषित थे और किस खूबी से इस नग्न सौदर्य की माधुरी का पान करते थे।' अत उनकी' शूपनखा आदि में जो मांसलता है उसपर विशेष आश्चर्य नही होना चाहिए। पर रीतिकाल की कटु आलोचना लिखनेवाले पत जी ने भी 'मधुवन' आदि कविताओ में पुरुष-नारी की जिस एकाकारिता का वर्णन किया है उसके सामने पद्माकर की प्रलय-भावना भी हार मान लेगी। नारी सम्बन्धी रूढियाँ जिनका निर्देश साहित्य दर्पण में—

पादाघातादशोक विकसति बकुल योषितामास्यमद्यै
यूनामङ्गेषु हारा स्फुटति च हृदय विप्रयोगस्य तापै ।
मौर्वी रोलम्बमाला धनुरथविशिखा कौसुमा, पुष्पकेतो
भिन्ना स्यादस्य बाणैर्युवजन हृदय स्त्रीकटाक्षेण तद्गत् ॥

——आदि कहकर किया गया है, केवल सस्कृत और हिन्दी रीति-काव्य में ही नही मिलती। वे पतकी कविताओ में भी बदस्तूर बनी है। यहाँ भी नारीके स्पर्श से प्रियगु, पादाघात से अशोक, देखने से तिलक, प्रेमवाक्य से मन्दार, हँसी से चपा, मुह की हवा से आम, और नृत्य से करोजिर पूर्ववत् खिल रहे हैं —

एक चचल-चितवन के व्याज
तिलक को चारु छत्र-सुख लाभ
तुम्हारे चल-पद चूम निहाल
मजरित अरुण अशोक सकाल,
स्पर्श से रोम-रोम तत्काल
सतत-सिंचित प्रियगु की बाल ।
स्वर्ण-कलियो की रुचि सुकुमार
चरा चम्पक तुमसे मृदु-वास,
तुम्हारी शुचि-स्मिति से साभार,
भ्रमर को आने दे क्यो पास ?

देख चचल मृदु-पद्दु पद-चार
लुटाता स्वर्ण-राशि कनियार,
हृदय फूलो में लिए उदार
नर्म-मर्मज्ञ मुग्ध मदार ।
तुम्हारी पी मुख-बास तरग
आज बौरे भौरे, सहकार ।

जब प्रसाद जी कहते है कि—

नारी के नयन ! त्रिगुणात्मक ये सन्निपात
किसको प्रमत्त नही करते
धैर्य किसका ये नही हरते ?

तो लगता है कि आधुनिक भाषा में रसलीन जी बोल रहे है।

इस प्रकार छायावाद पर अन्य प्रभावो के साथ सस्कृत साहित्य, रीतिकालीन कविता और उर्दू शायरी का भी प्रभाव पडा है।

छायावाद पर जो आध्यात्मिक रग-सा छा गया है उसको इस प्रकार समझ सकते है। छायावादी कवि प्रेमानुभूति लेकर आए पर वे अपनी अनुभूतियो की अभिव्यक्ति रीतिकालीन पद्धति पर नही कर सकते थे क्योकि वह हिन्दी की भूमिमें असत् पौराणिक सस्कृति की ध्वसचेतना का प्रतीक बन गई थी। नयी चेतना की नयी भाषा लहर मार रही थी। उधर, पश्चिम के वैज्ञानिक आविष्कारो के फलस्वरूप मध्यवर्गीय असतोष से उत्पन्न नीति हीन व्यक्तिवाद की लहरें देश के किनारो से टकराने लगी थी। उधर चेतना की नयी लहरो पर रवीन्द्र ने 'सोने की नाव' डाली थी। सूफी शायरी तो घर की चीज थी। अत हमारे कवियो ने रीतिकाल की भाँति देवताओं का आश्रय न ले नये प्रतीको का अवलम्ब ग्रहण किया। पर छायावाद का जन्म ही एक कुसायत में हुआ था।

छायावादके प्रथम चरणके मुख्यत तीन आलोचक थे—महावीर प्रसाद द्विवेदी, प० पद्म सिह शर्मा और लाला भगवान दीन। उनके अनुसार छायावादी कवियो के भाव, भाषा और अलकार सभी असत्य थे। द्विवेदी

जी 'सुकवि किकर' और 'द्विरेफ' के छद्म नामो से 'कमल-अमल, अरविंद मलिंदआदि अनोखे-अनोखे उपमानो की लाङ्गून' लगाने वाले छायावादी कवियोको 'कवित्वहता छोकडे' कह रहे थे। प० पद्मसिंह शर्मा छायावाद में 'कुत्सित कमनाशा की नई नदी' देखते थे। पत जी की 'वीणा' और 'पल्लव' पर उन्होने लिखा था कि —

'कविता-वल्ली का प्रतिभा के वारि से सींच कर 'पल्लव' निकालिये, खुशी से उसकी छाया में बैठकर 'वीणा' बजाइए, पर काव्य-कानन के कल्पवृक्षो की जड पर कुमति—कुठार न चलाइये। यह अत्याचार असह्य है। आपको इसकी गध नही भाती, शिकायत नही, अपनी पसन्द, अपनी रुचि—की जै कहा करता से न चारो—पर इनकी महक के मत-वाले मधुप भी हैं, उन वृक्षो पर न सही, इन पर दया कीजिए। 'पल्लव' के नोकीले और जहरीले काटे इनके दिलमें न चुभाइये, 'वीणा' में सोहनी स्वर छेडिए, 'मारू-राग' न बजाइए।' (पद्म राग, पृष्ठ ३४५)

लाला भगवान दीन छायावाद को अधकारवाद मानते थे —

'कवि को भाषा पर कमेंड होना चाहिए। आप में उसका अभाव है। आपका कवि होना वैसी ही अधिकार-चेष्टा है,जैसी मेरे लिए एम०एस० सी० क्लास का प्रोफेसर होना। नाम 'सत्य प्रकाश' और भटकते फिरते हो अँधेरे में। भारत में न तो छायावाद चलेगा और न प्रतिबिंबवाद, यहाँ तो प्रकाशवाद ही रहा है और रहेगा।'

(सुधा (भाद्र २०७ तु स) में छपा एक चिट्ठी)

स्पष्ट है कि छायावाद को मात्र नैतिक और शास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जा रहा था जिसका उसमें स्पष्ट विरोध था। छायावाद के प्रकृत सौंदर्य की ओर किसी का ध्यान न जा रहा था। परिस्थितियो की ऐसी होलिका लेकर छायावाद जन्मा था।

पर इन्ही लाछनाओ ने छायावादी कवियो को एक दूसरे के निकट लाया। एक छायावादी मोर्चा कायम हुआ। पत ने इन समालोचको को 'वारि-विकार के प्रेमी' और 'रणकुशल कठफोरे' कहा। श्रीमान गरगज

सिह 'साहित्य शार्दूल' ने खूब 'चाबुक' चलाया। बाद में आलोचकों का एक दूसरा गिरोह आया जिसमें रामचन्द्र शुक्ल, श्याम सुन्दर दास और श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी प्रधान थे। अब छायावाद एक पद्धति के रूप में स्वीकृत हुआ। इसके बाद एक तीसरा गिरोह आया जिसमें गुलाबराय नंददुलारे बाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी और शांतिप्रिय द्विवेदी के नाम उल्लेखनीय है। अब छायावाद एक दर्शन के रूप में स्वीकृत हुआ। पर शृंगारिकता और अस्पष्टता के लांछन बदस्तूर बने रहे। छायावादी मोर्चे पर खड़े कवि शृंगारिकता के आरोप के उत्तर और अपने पक्ष के समर्थन में मुख्यतः तीन तर्क देते रहे।

१ हम लौकिक भाषा में अलौकिक रागिनी गाते हैं। हमारे प्याले मिट्टी के हैं पर उन में प्राणों का आसव है। हम रूपात्मक प्रतीक के सहारे अरूप का आराधन करते हैं।

मैंने कब देखी मधुशाला ?
कब मांगा मरकत का प्याला ?
कब छलकी विद्रुम की हाला ?
मैं ने तो उसकी स्मिति में
केवल आँखें धो डालीं ?
क्यों जग कहता मतवाली ?

—यामा (महादेवी)

२ प्रेम स्वयं एक दर्शन है। सौंदर्य के अमृत का पान ही दिव्य जीवन का परम पुरुषार्थ है। प्रेम ही मुक्ति है।

दिव्य जीवन है छवि का पान,
यही आत्मा की तृषित पुकार

—रूपराशि (रामकुमार वर्मा)

अविराम प्रेम की बाहों में है मुक्ति यही जीवन-बंधन —पंत

(३) साहित्य साहित्य है और आचार आचार। साहित्य में अनेक रस, अनेक भाव रहते हैं। 'साहित्य को जीवित रखने के लिए

उसमें अनेक भाव, अनेक चित्रो का रहना आवश्यक है, और जबकि अपने अपने स्थान पर सभी भाव आनन्दप्रद और जीवन पैदा करनेवाले है।' (काव्य साहित्य-निराला) साहित्य में शृगार भी बुरा नही होता क्योंकि साहित्य एक कला है। फिर ससार के वैष्णव भक्तो और महान् कवियो ने भी तो लौकिक प्रम का चित्रण किया है। यह तर्क 'निराला' ने उपस्थित किया था और इस सिलसिले में उन्होने बगाल के वैष्णव कवियो स लेकर उमर खैयाम, गालिब और रवीन्द्रनाथ तक के नाम गिनाए थे।

"व्यापक साहित्य किसी सम्प्रदाय का साहित्य नही। शराब, कबाब, नायिका, निजन साज और सगीत के कवि उमर खैयाम की इज्जत साहित्य ससार के लोग जानते है। गालिब मशहूर शराबी थे। पर उनकी कृति कितनी सुन्दर है। व्यापक भावो के कवि रवीन्द्रनाथ ने भी इससे फायदा उठाया है—

कालि मधुयामिनी ज्योत्स्ना-निशीथे
कुंज कानने सुखे
फेनिलोच्छल यौवन-सुरा
धरेछि तोमार मुखे।
तमी चेये मोर आखी परे
धीरे पात्र लयेछ करे
हेसे करियाछ पान चुम्बन भरा
सरस बिवाधरे
कालि मधुयामिनीते ज्योत्स्ना-निशीथे
मधुर आवेश-भरे"

(कल वसन्त-ज्योत्स्ना की अर्धरात्रि को सुख से बगीचे के कुज मे छलकती हुई फेनिल यौवन की सुरा को मने तुम्हारे मुख पर रक्खा था। तुमने मेरी आँखो की ओर देखकर धीरे से पात्र (प्याला) हाथ में ले लिया, और हँसकर चुम्बनो से खिले हुए सरस बिवाधरो से मधुर आवेश में आ, पी गई।)"

—निराला (काव्य साहित्य-चाबुक)

निराला ने बिहारी को भी महाकवि माना था।

नवीन ने तो यह भी कहा कि लौकिक प्रेम जीवन का एक सत्य है। अत वह पाप नही है।

यो भुज भरकर हिये लगाना है क्या कोई पाप ?

--'नवीन'

भोग का कर्म, कर्म का भोग
यही जड का चेतन आनन्द

--प्रसाद 'कामायनी'

प्रथम तर्क में विशेष बल न था क्योकि छायावादी कवियो के प्रतीक कबीर के चरखा, चदरिया, हस और नैहर के प्रतीक न थे, वे सभी मादक प्रेम-भावो को प्रगट करनेवाले कमल, दीपक, मधु, मधुकर, चन्द्र, नक्षत्र आदि के कोमल प्रेम-प्रतीक थे। हीरक के तारो को चूरकर बनाये गये इस नये प्रेम-प्याले में जो शिराजी ढाली गई थी उसका रग भी काफी लाल था। 'अलमित चचल' और 'चचल चुम्बन' कोइ फर्क नही ला रहे थे। फिर रीतिकालीन श्रृगार-वर्णन के उपादानो का भी अनजान में पर्याप्त प्रयोग हो चुका था।

दूसरा तर्क भी साधना और सत्ता के अभाव में अत्यत साधारण था। तीसरे तर्क में काफी बल है और इस तर्क मे श्रृगार के आरोप का प्रकरणान्तर से समर्थन भी हो गया है।

पर निराला को छोडकर अन्य सभी छायावादी कवि आरम्भ से ही जन-भीरु रहे और परिस्थिति—जन्य हीनता के बीच जन्म लेने के कारण छायावाद भी ह्यादार रहा। अत जहाँ इन कवियो के चेतन ने तर्क उपस्थित किये वहाँ उनका उपचेतन शायद जगकातर हो उठा। वे अपनी सौदर्य-प्रतिमाओ को कायिक मासलताओ से मुक्त करने के लिये अधिक से अधिक कल्पना के रग में रगने लगे जिसमें उन पर एक आध्यात्मिक वेष्ठन चढ जाय। इसका एक प्रमाण यह है कि 'कानन-कुसुम' के पहले सस्करण में जहाँ अध्यात्मपरक एक भी गीत नहीं है वहाँ दूसरे

सस्करण में कुछ ऐसे नये गीत जो. दिये गए है जिनपर, अध्यात्म का-सा रग लानेवाली कल्पना चढी हुइ ह । 'प स' ओर 'गुजन' को भी हम इसी अर्थ में समझते हे । यह छायावाद का सबसे बडा दुर्भाग्य सिद्व हुआ । उस भूमि में अध्यात्म का तो विरवा उग सकता ही न था, कल्पना ने सहज सौंदर्य को भी दुर्बोध बना दिया। जहाँ रीतिकाल ने नारी को विलास की क्रीतदासी बना दिया था वहाँ छायावादियो ने उसे अप्सरा बना दिया । स्त्री करतार की सृष्टि न हाकर कल्पना के शीशमहल की परी हो गई । कल्पना के व्योम में विलास की रास के लिए एक नया मडल तैयार हो गया।

पर धीरे धीरे ये कवि आदर पाने लगे। आलोचको के दूसरे और तीसरे समुदायो के आते-आते वे युगप्रवत्तक के रूप में प्रतिष्ठित भी हो गए। तब वे फिर कल्पना के आकाश से धीरे धीरे जीवन की धरती पर आने लगे। और लगभग २० वर्षो के बाद १९३३-३४ में छायावाद की आध्यात्मिक कुहेलिका एकाएक फट-सी गई और अच्छा हुआ कि इसके विधाताओ के हाथो ही उसके कृत्रिम घुघट का मोचन हुआ।

पर आज जब कुहासा फट-सा गया है तब छायावन की रासभूमि में अनेक सौंदर्य-प्रतिमाएँ अक्षय यौवन लेकर मुस्कुराती दिखाई पड रही हैं । 'जूही की कली', 'आँखो के डोरे लाल आज खेली होली', 'आज रहने दो यह गृह काज, प्राण रहने दो यह गृह काज,' 'बीती विभावरी' आदि छायायुग के अनमोल प्रेम-गीत हे । 'जूही की कली' में क्षणिक यौवन को कला के स्पर्श से निराला ने हमारे लिए चिरस्थायी कर दिया है । 'आज रहने दो यह गृहकाज' में पत ने शृगार को स्वाभाविकता की अनुभूतिसिक्त सुरभि दी है । 'बीती विभावरी' में प्रसाद ने सोंदर्यभावना को नये स्वर से जगाया है । छायावाद ने जडतावादी साहित्य के रेगिस्तान में शाद्वल बसाया था । हम छायावन के केसर को अध्याम के ऊसर में क्यो बिखेरें ? हम चाणक्य की हृदयविहीन नीति और शकराचार्य के अरसिक सिद्धातो की बाँटियो से तौलकर इसका मूल्याकन क्यो करें ?

२३

छायावन की रास धरती पर हुई थी। मिट्टी की प्रतिमा ने क्षणिक दिन के आलोक में जीवन का लास्य रचा था। आज भी उसके अलको में मलयज बन्द है। उसकी वेणी में अगरु धूम की श्याम लहरियाँ उलझी हैं। उसके अधरोमें अमद राग भरा है। उसकी आँखो के लाल डोरो में विराग की रागिनी झल रही है। वह अलसाई सी है। अध्यात्म या राजनीति की छडी से उसे न छेडिए। वह बडे सुकुमार हाथो की पली है।

श्री सुमित्रानन्दन पत

दुहरा बदन, कौशल से काढे घुघराले बाल और दीप्त गौर मुखमडल
——हिन्दी के प्रियदर्शी कवि पत ।

रेखाएँ

अब पत जी उनचास पार कर चुके हैं। पर 'थोडे दिन हुए एक विदेशी चित्रकारने उनसे कहा था कि यदि आप योरोप में होते तो आपको केवल 'माडेल' बनाने के लिए लोग हजारो रुपये देने को तैयार होते। पत जी के बालो में अब वह सुनहलापन नही है, वे भूरे और सफेद भी हो चले है पर आज भी वे घुँघराले है और कघी के क्षणिक स्पर्श से इच्छित आकार प्रकार से उनके सिर पर शोभायमान हो जाते हैं। पत जी को इन बालो से बडा मोह है। लोगो से बातचीत करते, चलते-फिरते उनकी उँगलियाँ उन्हें ठीक करने में व्यस्त रहती है। और इन बालो की सुन्दरता के लिए वे नाई के ऋणी नही है। अपने जीवन में नाई को उन्हो ने बहुत कम ही पैसे दिये होगे। अपने बाल वे खुद काटते-छाँटते जैसे अपनी कविता की पक्तियो को। सरस्वती के भूतपूर्व सम्पादक पडित देवीदत्त शुक्ल कहा करते थे कि पतजी के बालो में भी कविता है'।* इन बालो की भी एक कहानी है। सातवें क्लास में पढते समय एक बार उनकी दृष्टि नेपोलियन की उस तस्वीर पर पडी जिसमें उसने लम्बे बाल रक्खे थे, उसे देख पत जी भी लम्बे बाल रखने लगे।

बालों के अतिरिक्त कपडो का भी इन्हें शौक है। इनके कपडे खास 'डिजाइन' के होते है। 'अगर पत जी राजनीतिक नेता होते तो गाधी टोपी और जवाहर जैकेट के समान पत-कुर्ता और पत-कोट तो जरूर चल पडते।'

माता-पिता का दिया नाम था गोसाईंदत्त पत। कहते है, पत जी के बडे भाई श्री हरदत्त पत के एक बिहारी मित्र थे श्री सुमित्रानन्दन सहाय।

---

* बच्चन ('प्रतीक')

उनका नाम कवि को भा गया और उन्होंने अपना नाम सुमित्रानन्दन पत रख लिया ।

जिसे महात्मा गाधी ने हिन्दुस्तान का स्विट्जरलैड कहा था उसी हिमालय की तराई में बसे अल्मोडा के कसौनी गाव के हरिताभ अचल में मई, १९०० ई० में पत जी का जन्म हुआ। जन्म के छ घटे बाद ही माता का देहान्त हो गया

नियति ने ही निज कुटिल कर से, सुखद
गोद मेरे लाड की थी छीन ली,
बाल्य ही में हो गई थी लुप्त हा !
मातृ-अञ्चल की अभय छाया मुझे ।

यह अभय छाया पत जी को पिता और फूफी की गोद में मिली । पिता प० गगादत्त जी कसौनी टी एस्टेट में एकाउन्टेन्ट थे ओर लकडी के स्वतत्र कारोबार से पैसा और यश दोनो प्राप्त कर चुके थे । पिता की धार्मिक प्रवृत्ति का प्रभाव पत जी पर भी पडा है। कविवर नियमित रूप से प्रात काल ध्यान किया करते है ।

रोमाटिक कवियो की तरह पत जी भी बचपन में अकेले रहना पसद करते थे । हमउम्र साथियो के साथ खेलते-कूदते शायद ही किसी ने उन्हें देखा होगा । सकोचशील, जनभीरु ओर शर्मीले तो आज भी हैं, पर अब वे थोडी दूर भी अकेले चलना नापसन्द करते है। आज आप सदा उन्हें किसी न किसीके साथ देखेंगे । ओर जब 'मैली तहमत, लम्बे रुखे-बाल' और नगे पावोवाले निराला जी के साथ दप-दप स्वच्छ पोशाक पहने पत जी चलते है तो एक दृश्य खडा हो जाता है। वैसे पत और निराला के स्वभाव में कही कोई मेल नही है । निराला ने पत जी के 'पल्लव' पर एक 'ध्वसात्मक लेख' भी लिखा था जिसे लेकर हिन्दी साहित्य में अर्से तक विवाद होतारहा । वि वाद इस बात पर भी होने लगा था कि पत बडे है या निराला ।' मेरे गीत और कला' शीर्षक निबन्ध में निराला ने पत पर भावापहरण का दोष लगाया था और उनके गीतो से

अपने गीतों को श्रेष्ठ सिद्ध किया था। जो लोग इस विवाद से बचना चाहते थे वे पत और निराला के ऊपर प्रसाद जी को प्रतिष्ठित कर देते थे। पर इससे छायावाद की वृहत्त्रयी—प्रसाद, पत और निराला की मित्रता में आच न आई। 'शायद ही किसी युग के तीन महान् कवियो में ऐसा स्नेह सबध रहा हो जैसा प्रसाद, निराला और पत में था।'

प्राय आपने कवियो को यह कहते सुना होगा कि कविता तो रात को लिखी जाती है, दिन के कोलाहल में कोई क्या लिखेगा। पर पत जी दिन के प्रकाश में ही लिखते है। उनके लिखने का ढग मैथिलीशरणजी से कुछ मिलता-जुलता है। वे एक भाव को अनेक प्रकार से प्रगट करते है और जल्दी-जल्दी उन तमाम मजमूनो को लिख लेते है। इसके बाद किचित सशोधन-परिवर्तन के साथ उनमे से किसी एक को चुनकर कागज पर उतार लेते है। पर गुप्त जी प्राय स्लेट पर लिखते है और पत जी कागज पर, और जिन कागजो पर लिखते है उन्हें अपने सशोधनो के साथ, द्विवेदी जी की तरह, सुरक्षित रखते है।

पत जी मात्र कविता ही नही करते, अन्य बातो में भी दिलचस्पी रखते है। कई बार बीमार पडकर बीमारियो और दवाइयो का इतना मर्म जान गए है कि एक साधारण डाक्टर उनसे हार मान जाय। पत जी को मत्र-तत्र में भी विश्वास है। हस्त-रेखाएँ और जन्मकुडली देखकर भविष्यवाणी भी करते है। ग्रहो के अनुसार ग्रह-ग्रस्त व्यक्तियो को मूगा, मोती, नीलम आदि पहनने का भी आदेश करते है। इधर योगी अरविन्द ने उन्हे विशेष प्रभावित किया है। जाने कविवर योग की क्रियाएँ करते है या नही।

पतजी की काव्य-प्रेरणा के मुख्यत तीन स्रोत रहे है—प्रकृति, अग्रज और कालिदास। आगे चलकर क्रमश मैथिली शरण गुप्त, श्रीमती नायडू, रवीन्द्र नाथ, और अग्रेज रोमाटिक कवियो से भी प्रभावित हुए।

काव्य : प्रेरणा और प्रतिबिंब

'तब मैं छोटा-सा चच भावुक किशोर था। मेरा कठ अभी फूटा न था। पर प्रकृति मुझ मातृहीन बालक को कवि-जीवन के लिए मेरे

बिना जाने ही जैसे तैयार करने लगी थी। मेरे हृदय में वह अपनी मीठी, स्वप्नो से भरी हुई चुप्पी अकित कर चुकी थी जो पीछे मेरे भीतर अस्फुट तुतले स्वरो में बज उठी। पहाडी पेडो का क्षितिज न जाने कितने ही गहरे-हल्के रगो के फूलो और कोपलो में मर्मरकर मेरे भीतर अपनी सुन्दरता की रगीन सुगधित तहें जमा चुका था। 'मधुबाला की मृदु बोली-सी' अपनी उस हृदय की गुजार को मैंने अपने 'वीणा' नामक सग्रह मे 'यह तो तुतली बोली मे है एक बालिका का उपहार!' कहा है। पर्वत प्रदेश के निर्मल चचल सौदय ने मेरे जीवन के चारो ओर अपने नीरव सौदर्य का जाल बुनना शुरू कर दिया था। मेरे मन के भीतर बरफ की ऊची चमकीली चोटियाँ रहस्य-भरे शिखरो की तरह उठने लगी था, जिन पर खडा हुआ नीला आकाश रेशमी चदावे की तरह आँखो के सामने फहराया करता था। कितने ही इन्द्रधनुष मेरे कल्पना के पट पर रगीन रेखाएँ खीच चुके थे। बिजलियाँ बचपन की आँखो का चकाचौध कर चुकी थी, फेनो के झरने मेरे मन को फुसलाकर अपने साथ गाने के लिये बहा जाते थे और सर्वोपरि हिमालय का आकाश-चुम्बी सौदय मेरे हृदय पर एक महान सदेश की तरह, एक स्वर्गान्मुखी आदर्श को तरह प्रतिष्ठिन हा चुका था। मै छुटपन से जनभीरु और शर्मिला था। इधर हिम-प्रदेश की प्राकृतिक सुन्दरता मुझ पर अपना जादू चला चुकी थी, इधर घर में मुझे मेघदूत' 'शकुतला' अ.र 'सरस्वती' मासिक पत्रिका में प्रकाशिन रचनाओ का मधुर पाठ सुनने को मिलता था जो मेरे मन में भरे हुए अवाक सौदय को जैसे वाणी की झकारो में झनझना उठने के लिए अज्ञात रूप से प्रेरणा देता था। मेरे बडे भाई साहित्य और काव्य के अनुरागी थे। वे खडी बोली में ौर पहाडी में प्राय कविता भी लिखते थे। मेरे मन में तभी से लिखने की ओर आकर्षण पैदा हो गया था, और मेरे प्रारम्भिक प्रयास भी शुरू हो गये थे जिन्हें मुझे किसी को दिखलाने का साहस नही होता था।'

यह तब की बात है जब पंत जी ११ वर्ष के थे और कसौनी की में पढ़ा करते थे। उस समय की रचनाएं अब नष्ट हो चुकी है। इसके बाद वे अल्मोड़ा गवर्नमेन्ट हाई स्कूल में आए। यहाँ इनका परिचय पं गोविन्द वल्लभ पंत के भतीजे पं० श्यामाचरण पंत से हुआ। उनके सम्पर्क ने इन्हें हिन्दी की ओर झुकाया। उन दिनों मैथिलीशरण जी की रचनाएँ जादू कर रही थी। अल्मोड़ा भी आन्दोलित हो उठा था। वहाँ एक पुस्तकालय की स्थापना हुई थी और खड़ी बोली के उस आरम्भिक आन्दोलन में अन्य नवयुवकों के साथ पंत जी भी सम्मिलित थे। उन्होंने हिन्दी की बहुत-सी किताबें मँगाकर पढ़ी थी। उसी समय उन्हें हिन्दी के शब्दों का इतना ज्ञान हो गया था कि उनके साथी उन्हें 'मशीनरी आफ वर्ड्स' भी कहने लगे थे। आठवें क्लास में तो, जब वे पन्द्रह-सोलह वर्ष के थे, उन्होंने नियमितरूप से कविता लिखना भी प्रारम्भ कर दिया था। गुप्त जी उनके आदर्श थे —

आरम्भ प्रयोगकाल

योग्य नहीं कुछ भेंट आप चिर मैथिली शरण,
गीत मैथिली के गा छूता स्नेह से चरण!
शैशव से ही रहा आप के प्रति आकर्षण
ललित भणिति का किया प्रीतिवश चपल अनुकरण!

उस समय वे गुप्त जी की 'भारत-भारती', 'जयद्रथ-वध', 'रंग में भंग' आदि रचनाओं और उनकी शैली से प्रभावित होकर हरिगीतिका, रोला, वीर आदि तत्कालीन हिन्दी की प्रचलित छंदों में लिखते थे। आठवीं कक्षा में उन्होंने 'हार' नामक एक उपन्यास लिखा था जिसकी पाडुलिपि नागरी प्रचारणी सभा, काशी, में आज भी रक्खी है। नवीं-दसवीं कक्षाओं में उन्होंने 'तम्बाकू का धुआँ', 'कागज का कुसुम' आदि कविताएं लिखी थीं जिनमें उनके नवीन भाव-विन्यास और शैली की पहली झाँकी मिली थी। पंत जी को काव्य-साधना का मोल भी चुकाना पड़ा। कविवर दसवीं कक्षा में फेल हो गए। पर दूसरे साल जब उन्होंने जय नारायण हाई स्कूल बनारस से हाइ स्कूल की परीक्षा दी तब उन्हें हिन्दी में डिस्टिङ्क्शन मिला। यह १९१९ की बात है।

बनारस में अध्ययन का अच्छा अवसर मिला। श्रीमती सरोजनी नायडू और रवीन्द्रनाथ की रचनाओ में उन्होंने अपने हृदय में छिपे सौंदर्य की प्रतिध्वनि सुनी। 'वीणा' में संग्रहीत अनेक कविताओ पर, जो यहाँ लिखी गईं, रवीन्द्र नाथ की छाप है। 'ममजीवन की प्रमुदित प्रात' वालागीत तो 'गीताञ्जलि' के 'अन्तर मम विकसित कर' वाले गान के आधार पर ही लिखा गया है। १९१९ की जुलाई में पत जी ने बनारस छोड दिया और प्रयाग के म्युअर कालेज में भर्ती हो गये। यही हिन्दू होस्टल में उन्होने 'इसविस्तृत हौस्टल में' शीर्षक कविता लिखी थी —

निर्माण छायाकाल

इस विस्तृत हौस्टल में मैं सुनती हूँ
मेरा भी है सखि ! छोटा सा रूम,
जहा मेरी आकड्क्षा—सूम
गूजती है प्रतिपल को तूम !

'वीणा' को कवि ने अपना 'दुधमुहा प्रयास' और 'बालकल्पना' कहा है। पर इसी 'बाल कल्पना' ने स्वच्छतावाद के प्रथमचरण में द्विवेदीकाल के महारथियो के दिलो में आतक उत्पन्न कर दिया था क्योकि तब कविता की कसौटी भाषा की शुद्धता और अर्थ की सफाइ थी और इधर 'वीणा' के तारो में छायावाद की नयी झिन्जनी बज रही थी। छायावाद में 'कुत्सित कामनाओ की नई नदी' देखनेवाले प० पद्मसिंह शर्मा ने 'वीणा' पर टिप्पणी करते हुए कहा था—'कविता-वल्ली को प्रतिभा के वारि मे सीचकर 'पल्लव' निकालिये, खुशी से उसकी छाया में बैठकर 'वीणा' बजाइए, पर काव्य-कानन के कल्पवृक्षो की जड पर—कुमति-कुठार न चलाइए। यह अत्याचार असह्य है। आपको इसकी मधु नही भाती, शिकायत नही, अपनी पसन्द, अपनी रुचि—कीजै कहा करता से न चारो—पर इनकी महक के मतवाले मधुप भी है, उन वृक्षो पर न सही, इन पर दया कीजिए—'पल्लव' के नोकीले और जहरीले काटे इनके दिल में न चुभाइये; 'वीणा' में सोहनी स्वर छेडिए, 'मारू राग' न बजाइए।'

यदि छायावाद के आरम्भ करने का श्रेय जयशंकर प्रसाद को और उसके नामकरण करने का श्री मुकुटधर पाण्डेय को है (जनश्रुति) तो उसे लोकप्रिय बनाने का बहुत कुछ श्रेय पंत जी को भी है। यदि पंत जी की आरम्भिक रचनाओं पर प्रसाद जी का प्रभाव है तो महादेवी वर्मा की आरम्भिक कविताओं में पंत जी की पंक्तियाँ प्रतिध्वनित है।

और जब छायावाद को लेकर पुराने और नये लेखकों में विवाद चला था तब प्रसाद जी एक प्रकार से तटस्थ थे। छायावादी मोर्चे पर डटे व्यक्तियों में श्रीमान् गगराज सिह साहित्य शार्दूल (निराला) सबसे अधिक 'चाबुक' चला रहे थे। पर उनके बाद पंत जी का ही स्थान था। द्विवेदी जी ने छायावादी कवियों को 'कवित्व हता छोकड़े' कहा था, 'निराला' ने पुराने आलोचकों को 'दुर्वाशा' की संज्ञा दी थी और पंत ने उन्हें 'वीणा' की भूमिका में 'रण कुशल कठफोरे' कहा था ––

"सत हंसों की तो वैसे भी चिन्ता नहीं रहती, हाँ, [illegible] के प्रेमियों के कठोर आघात से बचने के लिए [illegible] मैंने माना था कि इस भूमिका में अत्यंत विनीत तथा [illegible] का रोचक जाल फैलाकर उनकी रणकुशल कठफोरे की सी ठोंठ को बाँध दूँ। किन्तु 'निज कवित्त केहि लाग न नीका' वाली [illegible] के याद आते ही मेरे अभिमानी कवि ने निर्ममता का कवच पहन [illegible], मुझे, उनकी उभरी चोंच के लिए 'शोरवा' तैयार करने से हठात् [illegible]।"

इसी 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि का [illegible] रंगिणि' शीर्षक कविता ने 'काव्य साधना की दृष्टि से नवीन प्रभात की किरण की तरह प्रवेश कर' कवि के भीतर 'पल्लव काल के काव्य-जीवन का समारम्भ कर दिया था'।

इन्हीं दिनों (जनवरी १९२०) की [illegible], पंत ने 'ग्रंथि' नामक वियोगांत खंड-काव्य लिखा था। 'ग्रंथि' [illegible] की दृष्टि में पंत जी की वास्तविक प्रेम-ग्रंथि थी जो समाज के भय के कारण खुली नहीं। पंत जी ने उसे अपने जीवन की भविष्यवाणी कहा है।

'ग्रथि' के कथानक को दुखान्त बनाने की प्रेरणा देकर जैसे विधाता ने उस युवावस्था के प्रारम्भ में ही मेरे जीवन के बारे में भविष्यवाणी कर दी थी।'

'ग्रथि' की दो विशेषताए है। प्रथमत सस्कृत के सम्पर्क में आने के कारण कवि की भाषा पहले से अधिक तत्सम–प्रधान और अलकृत हो गई है। द्वितीयत 'ग्रथि' छायावाद के उस आन्दोलन की प्रतीक है जिसमें कविता कल्याणी को पुराने निगल की रूढियो से मुक्त करने का प्रयास किया जा रहा था। 'ग्रथि' के छद भी तुकान्त नही। उनमें 'अतुकान्त के सौदर्य-स्वरूप' का विधान है।

१९२१ के असहयोग आन्दोलन में गाधी जी के भाषण से प्रभावित होकर पत जी ने कॉलेज छोड दिया। इस साहित्यिक प्रवास में कवि के मन ने जान लिया कि 'मेरे जीवन का विधाता ने कविता के साथ ही ग्रथि-बधन जोडना निश्चय किया है'। १९२१ म उन्होने 'उच्छवास' नामक प्रेम-काव्य लिखा और इसके बाद 'आँसू'। 'ग्रथि' 'उच्छवास' और 'आसू' तीनो एक ही भावधारा की त्रिपथगा है। तीनो प्रेम के गीले गीत है। पर इन्ही गीतो ने कवि को अन्तर्दृष्टि दी और उनके बाह्य नयनो के सामने एक नया अतरिक्ष उदित किया।

"मेरे तरुण-हृदय का पहला ही आवेश प्रेम का प्रथम स्पर्श पाकर जैसे उच्छ्वास और आसू बनकर उड गया। उच्छ्वास के सहस्र दृग-सुमन खोल हुए पर्वत की तरह मेरा भविष्य जीवन भी जैसे स्वप्नो और भावनाओ के घने कुहासे मे ढँककर अपने ही भीतर छिप गया।

उड गया अचानक लो भूधर
फडका अपार वारिद के पर
अवशेष रह गए है निर्झर,
लो टूट पडा भू पर अबर!
धँस गये धरा में सभय शाल
उठ रहा धुआँ जल गया ताल,

यो जलदयान में विचर विचर, था
इन्द्र खेलता इन्द्रजाल

इसी भूधर की तरह, वास्तविकता की ऊँची-ऊची प्राचीरो से घिरा हुआ यह सामाजिक जगत, जो मेरे यौवन-सुलभ आशा-आकाक्षाओ से भरे हुए हृदय को, अनन्त विचारो, मतातरो, रूढियो, रीतियो की भूल-भूलैया -सा लगता था, जैसे मेरी आखो के सामने से ओझल हो गया। और योवन के आवेशो से उठ रहे वाष्पो के ऊपर मेरे हृदय मे जैसे एक नवीन अतरिक्ष उदय होने लगा।"

तब 'पल्लव' प्रकाशित हुआ। 'पल्लव' कवि की अनेक वर्षो की साधना का फल है। इसकाल में वह शेली, कीट्स, टेनिसन् आदि से विशेष प्रभावित रहा है। इसलिए 'पल्लव' में शेली का 'व्योमविहार', कीट्स की 'मादकता', टेनिसन् की स्वरसाधना और वर्डस्वर्थ का प्रकृति––समर्पण है। 'वीणा'-काल में पत अपनी भावनाओ के सूत्र में 'शब्दो की गुरियो' को पिरोना सीख रहे थे। अब उन्हें 'शब्द-चयन और ध्वनि सौदर्य का बोध' हो गया है। आरम्भ से ही अन्य स्वच्छदतावादी कवियो की तरह पत के भी विशेष प्रिय विषय रहे हैं प्रकृति और प्रेम और इन दोनो प्रिय विषयो की प्राञ्जल एव परिपक्व अभिव्यजना पहली बार 'पल्लव' में ही हुई।

"'वीणा' की रहस्यप्रिय बालिका अधिक मासल, सुरुचि-सुरगपूर्ण बनकर प्राय मुग्धा युवती का हृदय पाकर जीवन के प्रति अधिक सवेदनशील हो गई है। 'सोने का गान', 'निर्झर गान', 'मधुकरी', 'निर्झरी', 'विश्ववेणु', 'वीचिविलास' आदि रचनाओ में वह प्रकृति के रगजगत मे अभिनय करती-सी दिखाई देती है। अब उसे तुहिन-बन में छिपी स्वर्ण-ज्वाल का आभास मिलता है, उषा की मुसकान कनक-मदिर लगने लगी है। वह अब इस रहस्य को नही छिपाना चाहती कि उसके हृदय में कोमल बाण लग गया है। निर्झरी का अचल अब आसुओ से गीला जान पडता है, उसकी कल-कल ध्वनि उसे मूक व्यथा का मुखर भुलाव प्रतीत होती है। वह मधुकरी के साथ फूलो के कटोरो से मधुपान करने को व्याकुल

है। सरोवर की चचल लहरें उससे आँख मिचौनी खेलकर उसके आकु-
हृदय को दिव्य प्रेरणा से आश्वासन देने लगी है।"

'पल्लव' का प्रकाशन छाया-युग की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। शायद उस समय यह छायावाद की सबसे अधिक लोकप्रिय और आलोच्य पुस्तक थी। छायावाद और रहस्यवाद को एक माननेवाले व्यक्ति का तो एकमात्र यही आधार था। रहस्यवाद के प्रसग में पत जी का 'मौननिमत्रण' जितनी बार उद्धृत हुआ उतनी बार शायद छायावाद की कोई भी दूसरी कविता नही।

छायावाद का एक कमजोर पक्ष यह भी रहा है कि उसके स्रष्टा केवल सूक्तियो के गायक थे, आलोचक नही, जबकि अग्रेजी के रोमाटिक कवि कवि होने के साथ-साथ अच्छे समीक्षक भी थे। 'पल्लव' में पत ने पहली-वार छायावाद के बहिरग की परीक्षा की थी। 'पल्लव' की भूमिका छायावाद का मेनिफेस्टो बन गई थी।

एक बात और। छाया युग में जहाँ निराला ने पिगल की कारा तोडी थी वहा पत ने व्याकरण की। 'पल्लव' से तो यह प्रवृत्ति पत जी की कविता का एक अग बन गई। लिग निर्णय में वे सदा अर्थ-सौदय और श्रुतिमधुरता का ही ध्यान रखते है। छायायुग की भाषा में भी 'पल्लवो की यह सजल प्रभात', 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी' आदि ने एक नये स्वर का विधान किया था।

इस काल मे देश की विषम परिस्थिति भी कवि को विषण्ण करती रही है। उनका अशात मन शाति ढूढन के लिए दर्शन की ओर झुका। 'पल्लव' की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में हम उनके उन्मत्त मन को पढ पाते है।

'पल्लव' के प्रकाशन के दो ही साल बाद अर्थात् १९२८ में पत जी के पिता का देहावसान हुआ। पत जी स्वय भी बीमार पड गए पर डा० नीलाम्बर जोशी की चिकित्सा ने उन्हें निरोग कर दिया। पिता की मृत्यु और दीर्घ रुग्नता के उपरान्त पानेवाले स्वास्थ्य में कवि ने जीवन और

मृत्यु के अक्षरो मे लिखा हुआ मानव-जीवन का करुण-मधुर इतिहास पढा—

खेलता उधर जन्म लोचन
मूदती इधर मृत्यु क्षण-क्षण !

दर्शन ने फिर उनके मन को अस्थिर भाव जगत् से हटा कर चिरन्तन के लोक में प्रतिष्ठित किया।

अत 'पल्लव' के बाद की रचना 'गुजन' में हमे जीवन के प्रति एक नया आशावादी दृष्टिकोण मिलता है। 'गुजन' में कवि प्रकृति से मानव की ओर आया है—सुन्दर से शिव की भूमि मे उतरा है। 'गुजन' पत जी की भावधारा के निश्चित विकास का द्योतक है।

'गुजन' में पत जी की सौदय-कल्पना आत्मकल्याण तक ही सीमित रही है। मानववाद और समाजवाद के समन्वय से विश्वमगल की भावना की प्रतिष्ठा 'गुजन' के बाद की रचना 'ज्योत्स्ना' रूपक में हुइ है।

छायायुग को पत की देन

छायावाद के प्रजापतियो में प्रसाद सबसे अधिक गरिमामय थे, निराला सबसे अधिक पौरुषपूण और पत सबसे अधिक कोमल-प्राण। प्रसाद ने छायावाद को कल्पना की एकतानता दी, निराला ने अह की पूणता और पत ने उसे रूप की कोमलता, मन की प्रसन्नता और वाणी की स्निग्धता दी। महादवी उसे हृदय की करुणा से स्नात करने को बाद में आयी। पर महादेवी जी की आरम्भिक रचनाओ पर पत जी का प्रभाव कम नही है। सच तो यह है कि छायावाद को लोकप्रिय बनाने में पत जी का भी बहुत बडा हाथ रहा है। पत जी ने सबसे पहले छायावाद के बहिरग की सम्यक व्याख्या की थी। बादमें जयशकर प्रसादजी ने छायावाद-रहस्यवाद की भारतीयता सिद्ध की और महादेवी जी ने उसके दाशनिक पक्ष का उद्घाटन किया। अर्थ की रमणीयता और श्रुतिमधुरता के आधार पर शब्दो का नये ढग से लिग-निर्धारणकर पत जी ने छाया युग की भाषा में एक नवीन रागवाद को चलाया था। पूर्व और पश्चिम का समन्वय भी छायायुग का

एक नारा था। तब बगला मे कवीन्द्र रवीन्द्र ने इस समन्वय को वाणी दी थी और हिन्दी काव्य में सबसे अधिक पत ने। जब छायावादी कवि रहस्योन्मुख होने लगे तब प्रसाद जी प्रेमपरक रहस्यवाद (Love mysticism) तथा निराला भक्तिपरक रहस्यवाद (Divotional mysticism) की ओर झुके और पत जी आधुनिक हिंदी काव्य साहित्य में प्रकृतिपरक रहस्यवाद (Nature mysticism) के प्रवर्तक बने।

दिशान्तर
प्रगतिकाल

'गुजन'-काल के 'सघष और सधि पराभव' के बाद हम पत जी को 'युगान्त' (१९३६) के मरु मे खडा देखते हैं। 'युगान्त' का प्रकाशन भी हिन्दी-साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके साथ जैसे हिन्दी कविता के एक युग—छायायुग का अत और दूसरे—प्रगतियुग का आरम्भ हो जाता है। 'युगान्त' में कवि इस निष्कर्ष पर पहुँच गया है कि मानव सभ्यता का पिछला युग समाप्त हो रहा है और एक नया युग प्रगट होने की राह ढूढ रहा है। प्रथम युरोपीय महायुद्ध के अत ने वहा के कवियो को 'वैयक्तिक स्वर्ग कल्पना' से सामाजिक पुनर्निर्माण की ओर खीचा था। इधर भारतीय असहयोग आन्दोलन ने जागरण का नया सदेश लाया था। उसी सामाजिक जागरण की आँधी को १९३४ की फरवरी में पत ने इन पक्तियों में रूपायित किया था—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
हे त्रस्त-ध्वस्त ! हे शुष्क-शीर्ण !
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीत-राग, जड, पुराचीन !!

कवि को यह विश्वास हो गया है कि इस नये युग के साथ एक नयी सस्कृति और एक नया मानव धरती पर अवतरित हो रहा है। यह नया आदमी सामत युग के जीर्ण सस्कारो और रूढियो से अपनी चेतना को मुक्त कर यत्रयुग के नये सौदर्यबोध के अनुरूप वैज्ञानिक ढग से अपना

नवनिर्माण करेगा। 'युगांत' में कवि ने विगत को विदाई दी है और नवागत का स्वागत किया है—

नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन,
ध्वंस-भ्रंश जग के जड़-बंधन !
पावक पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन !

'पल्लव' तक पंत जी प्रकृति-दर्शन (Naturalistic philosophy) से अनुप्राणित थे। परवर्ती काल में वे प्रकृति से मानव की ओर आए। 'पल्लव' तक वे 'सुन्दरम्' के उपासक थे। 'गुंजन' में वे 'शिवम्' के आराधक बने। 'गुंजन' के कवि ने वैयक्तिक उल्लास-अवसाद, कल्पना-संवेदना को आत्मोत्कर्ष (Sublimation) का रूप तो दिया, पर वे व्यक्ति कल्याण तक ही जा सके। 'युगान्त' का कवि व्यक्ति से समाज की ओर आया है। स्वभावत उसकी अन्तर्मुखी दृष्टि यहाँ पहुँचकर बहिर्मुखी बनने का उपक्रम करने लगी है।

युग के इस तूफान को छायावाद की सौदर्यकल्पना अपने में बाँध नही सकती थी। 'छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौदर्य-बोध, और नवीन विचारो का रस नही था। वह काव्य न रहकर केवल अलकृत संगीत बन गया था। द्विवेदी युग के काव्य की तुलना में छाया-वाद इसलिए आधुनिक था कि उसके सौदर्य-बोध और कल्पना में—पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ गया था, और उसका भाव-शरीर द्विवेदी युग के काव्य की परम्परागत सामाजिकता से पृथक् हो गया था। किन्तु वह एक नये युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नही कर सकता था। उसमें व्यावसायिक क्राति और विकास-वाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्न-वस्त्र धारणा, (वास्तविकता) नही आई थी। उसके 'हास अश्रु आशाऽकाक्षा' 'खाद्यमधुपायी' नही बने थे। इसलिए एक ओर वह निगूढ, रहस्यात्मक,

भावप्रधान (सबजेक्टिव) और वैयक्तिक हो गया, और दूसरी ओर केवल टेकनीक और आवरण मात्र रह गया।'

'युगान्त' में पंत ने ध्वंस और निर्माण का एक नया सरगम बाँधा है। जिसतरह 'गुंजन' की भावधारा 'ज्योत्स्ना' में अधिक प्रखर हो उठी है उसी तरह 'युगान्त' के निष्कर्ष 'पाँच कहानियाँ' में अधिक मांसल होकर उतरे हैं।

'युगान्त' को पूरा करते समय कवि ने लिखा था कि 'मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य में मैं उसे अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एवं प्रदान कर सकूँगा।' इस 'नवीन क्षेत्र' का साहित्यिक नाम प्रगतिवाद है जिसे 'युगान्त' के बाद 'युगवाणी' (१९३९) और 'ग्राम्या' (१९४०) में दृढतापूर्वक ग्रहण किया गया है। यदि "'युगान्त' छायायुग का अंत है तो 'युगवाणी' प्रगतियुग का जयघोष और 'ग्राम्या' उसका प्रयोग"। 'युगवाणी' पंत के चिंतन का 'दर्शन पक्ष' है और 'ग्राम्या' उसी का 'भाव पक्ष'। 'युगान्त' में कवि के निष्कर्षों के पग-चिह्न धुंधले दिखाई पड़ते हैं। 'युगवाणी' के युगदर्शन में उसने मानव के सामाजिक अभ्युदय के कुछ सिद्धान्त निश्चित कर लिए हैं। 'युगवाणी' के प्रकाशन तक प्रगतिवाद ने एक सक्रिय आन्दोलन का रूप ले लिया था। १९३५ में फासिस्ट-विरोधी लेखकों की एक सभा गोर्की के नेतृत्व में पेरिस में हुई थी जिसमें आन्द्रे, गाइड, फौरेस्टर आदि भी उपस्थित थे। डा० मुल्कराज ने भारत का प्रतिनिधित्व किया था। उस बैठक में 'International Association of writers for the defence of culture against Fascism नामक संस्था की स्थापना हुई थी। उसी साल डा० मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर आदि ने लंदन में 'Indian Progressive Writers' Association' कायम किया। उसी साल भारत में प्रगतिशील संघ की एक बैठक हुई। दूसरे साल स्व० प्रेमचन्द ने लखनऊ अधिवेशन में सभापतित्व ग्रहण किया। साहित्य में अब वादों और वर्गों की चर्चा थी। पंत जी ने लिखा है कि 'युग-

वाणी' में 'युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया है'। अत 'युगवाणी' म मार्क्सवाद, गाधीवाद, साम्राज्यवाद, समाजवाद, भोतिकवाद आदि पर लिखी पक्तियो में युग की मनोवृत्ति का ही कठस्वर सुनाई पडता हे। 'युगवाणी' में भूतवाद और अध्यात्मवाद, अतस् और बाह्य, पदार्थ ओर चेतना का समीकरण कर एक नवीन समन्वयवादी जीवन-दर्शन खडा किया गया है। 'युगवाणी' के जीवन-दशन की 'कुजी' 'बापू' शीर्षक कविता की इन पक्तियो में मिलेगी —

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान
जहा आत्म-दर्शन अनादि से समासीन अम्लान

पत जी ने "युगवाणी' को विश्वमूर्ति कहा हे जिससे वह जातिमन से मुक्त होकर युग के विश्वमन एव लोकमन को अपने स्वरो में मूल कर सके मनुष्य की अतश्चेतना में जो सत्य अभी अमूत है उसे रूप दे सके जीवन-सौदय की जो प्रतिमा आज अतमन में विकसित हो रही है उसे भोतिक जीवन में साकार कर सके, और हमारा मन स्वग पृथ्वी पर उतर आये।"

'युगवाणी' को पत ने 'गीत-गद्य' इसलिए कहा कि उसमें छागायुग की अलकृति नही है वरन् उसका काव्य 'अप्रच्छन्न, अनलकृत और विचार-भावना-प्रधान' है।

'ग्राम्या' में कवि ने 'युगवाणी' के सिद्धान्त वाक्यो को व्यावहारिक रूप दिया है। 'युगवाणी' का कवि लोकजीवन को 'नक्षत्र लोक' के वातायन से देख रहा था। 'ग्राम्या' में वह कुरूप धरती पर उतर कर 'कीडो से रेंगते मनुजतन' को देख रहा है। वैसे 'ग्राम्या' की कविताएं भी ग्राम जीवन के भीतर से नहीं लिखी गई है, कवि की दृष्टि में 'वैसा करना प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता' पर इतना अवश्य है 'ग्राम्या' में कवि दर्शक की भाँति ही सही पर जगजीवन का निकट से निरीक्षण-परीक्षण कर रहा है।

फिर 'ग्राम्या' मात्र 'गीत-गद्य' नही है, उसमे पत जी के काव्य का अत्यन्त मनोरम रूप प्रगट हुआ है। न केवल विचारधारा की दृष्टि से वरन् कला और भाषा की दृष्टि भी 'ग्राम्या' का पत जी के काव्य-साहित्य में

एक विशेष स्थान है। 'ग्राम्या' में हम पहलीवार पत जी के शिष्ट हास्य और परिष्कृत व्यग का दर्शन करते है। गाव में पहुँचकर पत जी की तथाकथित 'एरिस्टोक्रेटिक भाषा' 'प्रौलेटैरियट' बनकर सबके लिए बोधगम्य बन गई है।

प्रगतिवाद को पत की देन

छायावाद की तरह प्रगतिवाद को भी लोक प्रिय बनाने का श्रेय पत जी को है। आज 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' में टाटा और बिडला का सोना को देखा जा रहा है और कुछ दिन पहले शिवदान सिह चौहान ने पत जी को मार्क्सवादी सिद्ध किया था। इसी असगति में हम पत जी का स्थान निर्धारित कर सकेंगे।

पत जी प्रगतिवाद के प्रथम चरग के पुरोहित थे। पूरनचन्द्र जोशी की कम्युनिस्ट पार्टी उनसे सदेश मागती थी। आज भी 'धोबियो का नृत्य' और 'कहारो का रुद्र नृत्य' प्रगतिवाद की श्रेष्ठतम रचनाएँ है। पददलित, भूलुठित, वर्ग-शोषित जनो के जीवन के सामूहिक उल्लास-उमग, राग रग का वर्णन, इतने उत्साहपूर्ण ढग से शायद किसी अन्य प्रगतिवादी कवि ने नही किया है। यदि प्रगतिवादी हिन्दी साहित्य से पत-साहित्य को अलग कर दिया जाय तो उसका दामन ही छूछा पड जायगा।

तत्कालीन प्रगतिवादी कवियो में शायद अकेले पत जी ने ही कलाकार की मर्यादा की रक्षा की थी। कम्यूनिस्ट पार्टी को दिये गये सदेश में पत जी ने कहा था कि 'मेरे प्राण सौदर्यवादी है, और मेरा सौदर्य लोकप्राण है, इसीलिए मै कम्यूनिजम से प्रभावित हूँ।' ओर चूकि उनका सौदर्य दशन लोकप्राण था, इसलिए वे वग और पार्टी की सकीर्णता को स्वीकार न कर सके। पत जी ने मार्क्सवाद का अध्ययन किया पर उसका अध शिष्यत्व ग्रहण नही किया। मार्क्सवाद के अनुसार क्राति का नेतृत्व शहर के समझदार मजदूर करेंगे। पत जी का विश्वास इसके विपरीत है।

मनुष्यत्व के मूलतत्त्व ग्रामो ही में अतर्हित,
उपादान भावी सस्कृति के भरे यहाँ है अविकृत।

(ग्राम्या)

यह मार्क्सवाद नही गाधीवाद है । पर आज मार्क्सवादी माओ-से-तुग भी चीन में साम्यवाद को देशानुरूप बनाने का ही प्रयत्न कर रहे है।

उस काल में पत जी ने मार्क्सवाद और गाधीवाद, भूतवाद और अध्यात्मवाद का समीकरणकर प्रगतिवादको एक नया जीवन-दर्शन देना चाहा था। शातिप्रिय द्विवेदी ने कहा था कि 'पत वैज्ञानिक गाधीवाद और आध्यात्मिक मार्क्सवाद चाहते है' और उन्होने इस पतीय मतवाद को 'ललितवाद' की सज्ञा दी थी। हम उसे समन्वयवाद ही कहना चाहते है।

प्रगतिवादी रचनाओ में प्राय सशय, कटुता, अविश्वास और अशिष्ट व्यग देखे जाते है। पत जी की रचनाए इसके अपवाद है। पत जी का विश्वास अभिनव और विरल है। उनका व्यग चोखा होकर भी शिष्टता की मर्यादा लिए हुए है।

पत जी की प्रगतिवादी रचनाओ में मर्यादा की एक ओर सीमा है। प्रगतिवाद में आर्थिक प्रजातत्र' के साथ 'सेक्स-प्रजातन्त्र' की भी गर्म चर्चा है। सेक्स-स्वातन्त्र्य के नाम पर अनेक बदबूदार चीजें भी सामने आई है। पत जी में ऐन्द्रिकता है और अनेक जगह उसमें वासना भी है, पर प्राय पत जी की सेक्स-भावना स्वस्थ है और उसमें मासपूजा का 'रुग्नविलास' नही है।

मास मुक्ति है भाव मुक्ति, और भाव मुक्ति जीवन उल्लास,
मास मुक्ति ही लोक मुक्ति भव जीवन का जो चरम विकास।

(युगवाणी)

त्यावर्त्तन : स्वर्ण-काल

'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' के साथ पत जी के कविजीवन का तीसरा अध्याय आरम्भ होता है । ससारव्यापी द्वितीय महासमरके नारकीय दृश्यो, विज्ञान के ध्वसकारी परिणाम, स्वतत्रा-प्राप्तिके बाद होनेवाले भीषण नरसहार आदि घटनाओ ने कविके मनमें भौतिकता की प्रतिक्रिया उत्पन्न की है।

अभी-अभी पत जी ने दीघ अस्वस्थता के उपरान्त डा० जोशी के उपचार से स्वास्थ्य लाभ किया था और जब-जब वे कठिन रुग्नता के बाद स्वस्थ हुए हैं तब-तब उनका 'सूक्ष्मचेता मन' अध्यात्म की ओर झुकना देखा गया है । एक बात और, पत जी का सबध इधर योगी अरविन्द के आश्रम से भी हो गया है । अत 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' के दर्शन को हम युद्धोत्तर राजनैतिक घटनाओ, वैयक्तिक चिताओ और अरविन्द के प्रभाव की पृष्ठभूमि में पढ सकेंगे ।

छायायुग में पत जी 'पल्लव' से 'गुजन' और 'ज्योत्स्ना' तक चलकर शरीर से मन और आत्मा की ओर आए थे । प्रगतिकाल में वे आत्मा मे बाहर समाज में उतर आए थे । यद्यपि उस काल-खण्ड की रचनाओ में भी कवि ने मानव-जीवन का उपचार आत्मसत्य ओर वस्तुसत्य, भूतवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय में ही ढूढा था पर उस काल की कृतियो में भौतिक समस्याएँ ही प्रधान बनी हुई थी । परवर्ती काल की घटनाओ ने उसके मन के प्रवाह को मोड दिया है । वे आज फिर सामाजिक जीवन से अन्तर्मन की ओर प्रवृत्त हो गये है । आज उनकी दृष्टि में वर्तमान जीवन की समस्या का बहुलाश बाहर नही भीतर है और इसलिए उसका निदान भी आत्मा में ही ढूढना पडेगा —

सामाजिक जीवन से कही महत् अन्तर्मन,
बृहत् विश्व इतिहास, चेतना गीता कितु चिरतन ।

पत जी ने उचित ही 'स्वर्णकिरण' का 'अतर की आभा' कहा है —

स्वर्ण किरण अतर की आभा अतर में कर वितरण !

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की समस्या युग की समस्या है, 'स्वर्ण किरण' और 'स्वण धूलि' की समस्या युग-युग की समस्या है ।

कवि को विश्वास हो गया है कि अति-भौतिकवाद के कारण मानव जीवन का रस सूखता जा रहा है—

बहिर्चेतना जाग्रत जग में, अतर्मानव निद्रित,
बाह्य परिस्थितियाँ जीवित, अतर्जीवन मूर्छित, मृत !

भौतिक वैभव औ' आत्मिक ऐश्वर्य नहीं सयोजित,
दर्शन औ' विज्ञान विश्व जीवन में नही समन्वित !

इस यात्रिक युग के भीषण लौह अस्थि-पजर में मनुष्यत्व के हृदय का स्पदन कैसे हो—यही उसकी दृष्टि में आज का सबसे महान् प्रश्न है और वह अणुयुग के वासियो को इसी प्रश्न पर विचार करने के हेतु आमन्त्रित करता है—

आओ, सोचें द्विपद जीव कैसे बन सकता मानव,
शक्ति-मत्त होकर भूदेव न बन जाए भू-दानव !
मानव सस्कृति का क्या स्वर्ग बसायेगा वह भू पर,
भीषण अणु का भू प्रकप या छोड़ेगा प्रलयकर !
नव मनुष्यता होगी भू सगठित कि राष्ट्र विभाजित,
अन्तर्देवो से प्रेरित या भूत दैत्य से शासित ?
धरा बनेगी शांति धाम या रक्त क्षेत्र रण जर्जर,
अमृत व्योम से बरसेगा ? विष वह्नि विनाश भयकर ?

पत जी ने इस प्रश्न का उत्तर अन्तर्जीवन के प्रवाह में पाया है।

अन्तर्जीवन का प्रवाह ही
भर सकता जग में समत्व नव !

पतजी यह मानते है कि सामाजिक स्तर ऊँचा करने के लिए व्यक्ति पर पर ध्यान रखना होगा। सामाजिक जीवन व्यक्ति के आत्मिक विकास पर निर्भर करता है। व्यक्ति ही अपनी चेतना को रूपान्तरित कर विकसित समाज का निर्माण करेगा। पृथ्वी पर सामाजिक जीवन का सुखस्वर्ग उतारने के लिए विश्व के बाह्य रूपान्तर के साथ व्यक्ति को अतर का रूपान्तर होना भी आवश्यक है।

विस्तृत जो हो जाए मानव-अतर, चेतना विकसित,
आत्मा के स्पर्शो से भू-रज सहज हो उठेगी जीवित !
अतर् का रूपान्तर हो औ' बाह्य विश्व का रूपान्तर
नव चेतना-विकास धरा को स्वर्ग बना दे चिर सुन्दर !

जन-मन के विकास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित,
सस्कृति का भू-स्वर्ग अमर आत्मिक विकास पर अवलबित !

इस भाँति पत जी इन रचनाओ में एक बार फिर व्यक्ति, आत्मा और अध्यात्म की आर लौट आए है।

पर इसका यह तात्पर्य नही कि आज उन्होने जिस आध्यात्मिक अन्तर्चेतना को वाणी दी है उससे भौतिकता का सवर्था बहिष्कार कर दिया है। आज भी उनकी चेतना समन्वयवादी है—

ब्रह्मज्ञान रे विद्या, भूतो का एकान्त समन्वय,
भौतिक ज्ञान अविद्या, बहुमुख एक सत्य का परिचय।

वे आज भी मानते है कि जीवन-साफल्य का मूलतत्त्व भूत और अध्यात्म का समन्वय है--जीवन-तत्त्वो का सतुलन है --

वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन,
भूतवाद हो जिसका रज तन प्राणिवाद जिसका मन,
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गभीर चिरतन।

पर इतना अवश्य है कि अतिशय भौतिकता की प्रतिक्रिया के कारण आज पत जी अध्यात्म की ओर अधिक उन्मुख है—

आज हमें मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख।

अरविन्द का प्रभाव इस प्रकार है। अरविन्द अपनी योगसाधना के द्वारा ससार को दिव्य बनाना चाहते है। वे इस जगत् को माया नही भगवान् का सस्थान मानते है। इसलिए वे ससार से भागना नही चाहते। यही उनमें और पहले के योगियो में अतर है। अरविन्द इसी पृथ्वी पर योग के द्वारा अमरत्व उतारना चाहते है। वाह्य जीवन में आतरिक रूपान्तर और विकास लाकर मनुष्य में देवत्व की अवतारणा करना उनके योग का लक्ष्य है। पत जी में हम अरविन्द के इन योग सिद्धातो का प्रभाव देख सकते ह। कही २ तो अरविन्द के ऊर्ध्व मानव और अतिमानस चेतना के भी दर्शन हो जाते है।

ऊर्ध्व चेतना को चलना भू पर धर जीवन के पग
समदिक् मन को पख खोल चिद्नभ में उठना व्यापक !

'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्ण धूलि' के प्रकाशन ने पतजी के व्यक्तित्व को आज बहस का अखाडा बना दिया है।

सिंहावलोकन

पत जी कवि है। उन्हे सृष्टि की अभिनव प्रतिभा और वाणी का वरदान प्राप्त है। लाघव चितन और विपल अभिव्यक्ति उनकी विशेषता है—और यह विशेषता विशिष्ट कवियो में ही मिल सकती है।

पत जी मुख्यत सुन्दर के कवि है। उनका मन सौदर्यजीवी है। सघर्ष और कटुता उन्हें अप्रिय है। उनके सौदर्यबुभुक्षु मन ने अपनी परितृप्ति के लिए एक ओर 'उन्मद मधुवन' की ओर देखा है और दूसरी ओर 'निखिल छवि की छवि' नारी की ओर। यहाँ न तो कोलरिज की प्रकृति का खूनी पजा है, न रवीन्द्र की कुरूपा की प्रेम साधना। पत जी, जैसा उन्होने जोशी जी के नाम लिखे गए पत्र में लिखा है, सौदर्य ढूढने के लिए ही कम्यूनिज्म ओर आकर्षित हुए थे। तब वे प्रगतिवादी सिद्धान्तानुसार 'कुत्सित कुरूप में" रूप का सधान कर रहे थे। आज वे आत्मिक सौदर्य से सम्मोहित है। कह सकते है कि उन्होने सौदर्य को एक व्यापक रूप में देखा है और वे अपनी सौदर्य-भावना का उन्नयन करते चले है।

पर यह सुन्दर शिव से सवर्था रिक्त भी नही है। उनके सुन्दर में शिव समाहित है। उनका काव्य कोरी कल्पना का भारवाही भृत्य नही है। वह मागलिक भावनाओ से स्नात है। पत जी मानवता के कवि है। उनका काव्य विश्व-मानव की पूजी है।

कहा जाता है कि पत जी में सुन्दर और शिव के तो दर्शन होते है पर सत्य के नही जो कला का सबसे महान् लक्ष्य है और साथ ही 'उनमें वह अनुभूति की तीव्रता नही मिलती, जो सत्य की अभिव्यक्ति के लिए

आवश्यक है'। इस सम्बन्ध में पत जी ने कहा है कि 'यह सच है कि व्यक्तिगत सुख दुख के सत्य को अथवा अपने मानसिक सघर्ष को मैंने अपनी रचनाओ में वाणी नही दी है, क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है। 'गुजन मे तप रे मधुर मधुर मन', 'मै सीख न पाया अब तक सुख से दुख को अपनाना आदि अनेक रचनाएँ मेरी इस रुचि की द्योतक है। मुझे लगता है कि सत्य शिव में स्वय निहित है। जिस प्रकार फूल में रूप रग है, फल में जीवनोपयोगी रस, और फूल की परिणति फल में सत्य के नियमो ही द्वारा होती है, उसी प्रकार सुन्दरम् की परिणति शिवम् में सत्य ही द्वारा हो सकती है। यदि कोई वस्तु उपयोगी (शिव) है तो उसके आधारभूत कारण उस उपयोगिता से सबध रखनेवाले सत्य में अवश्य होने चाहिए, नही तो उपयोगी नही हो सकती। इसी प्रकार अनुभूति की तीव्रता भी सापेक्ष है, और मेरी रचनाओ में उनका सबध मेरे स्वभाव से है। सत्य के दो रूप है,—शराबी शराब पीता है यह सत्य है, उसे शराब नही पीना चाहिए, यह भी सत्य है। एक उसका वास्तविक (फैक्चुवल) रूप है, दूसरा परिणाम से सबध रखनेवाला। मेरी रचनाओ में सत्य के दूसरे पक्ष के प्रति मोह मिलता है, वह मेरा सस्कार है, आत्मविकास (सब्लिमेशन) की ओर जाना। अनुभूति की तीव्रता का बोध बहिर्मुखी (एक्स्ट्रोवट) स्वभाव अधिक करवा सकता है, मगल का बोध अतर्मुखी स्वभाव (इस्ट्रोवर्ट)। क्योंकि दूसरा कारण-रूप अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त न कर उसके फलस्वरूप कल्याणमयी अनुभूति को वाणी देता है। मेरे पल्लवकाल की रचनाओ में, तुलनात्मक दृष्टि से, मानसिक सघर्ष ओर हार्दिकता अधिक मिलती है, और बाद की रचनाओ में आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की इच्छा।'

पतजी कोमल-प्राण कवि है। उन्होने प्रकृति को नारी के रूप में—मा और सहचरी के रूप में—देखा है और निसर्ग से तादात्म्य अनुभव करते समय स्वय अपने को भी नारी के रूप में चित्रित किया है। उन्होने 'कोमल मनुज कलेवर' की कल्पना की है और 'अविराम प्रेम की बाहो में'

मुक्ति पायी है। उन्होंने पुल्लिग शब्दो का स्त्रीलिग प्रयोग किया है। अत पतजी के प्राण कोमल हे, उनकी कल्पना सुकुमार है ओर उनकी कला नारी है।

पत जी की भाषा में राग ओर चित्र हे। कल्पना, चित्र ओर प्रवाह के कारण उनकी भाषा अत्यत बनी हे। एक भाव का वे अनेक कल्पना-चित्रो में लाघव के साथ अभिव्यक्त कर सकते हे। पद्य में उनकी भाषा खिलती है, गद्य में वह बोझिल जान पडती है।

पत जी के प्रिय विषय ह प्रकृति, नारी, मानव, पेम, और आत्मा। प्रकृति की नील झनकार म उन्होने काव्य की प्रथम स्वर-साधना की थी। मम की वाणी भी उन्होने वृक्षो के ममर मे ही सुनी थी। वर्डसवथ की भाँति उन्होने भी प्रकृति में अमरत्व का सदेश सुना था ओर शेली की भाँति उसमें एक महती छाया देखी थी। पर वर्डसवर्थ की प्रकृति दृष्टि का विषय है और पत की प्रकृति अनुभूति का। प्रकृति न केवल उनके काव्य का परमप्रिय उपादान हे वरन् उनके विचारो की अभिव्यक्ति का साधन भी। आज जब वे अपने को प्राकृतिक दशन से विमुक्त करने चले हे तब प्रकृति का दूसरा पक्ष ही प्रधान हो रहा है।

प्रकृति के बाद नारी ने उन्हें आकर्षित किया है। वस्तुत प्रकृति ओर नारी उनकी सौंदयभावनाके ही उभय पक्ष है। जब वे प्रकृतिका ध्यान करते है तब उनके सामने चेतना और चपलता से युक्त लावण्यमयी नारी खडी हो जाती हे और जब वे नारी का ध्यान करते हे तब उनकी आँखो में 'शरदाकाश' छा जाता है। उनकी नारी में यौन-आकर्षण के साथ दिव्यता भी है। उन्होने नारी को जीवन-प्राण, सहचरी, माता, देवी और सौदर्य भावना के रूप में चित्रित किया है—"**तुम्हारे छूने में था प्राण, सग में पावन गगा-स्नान**'।

पत जी ने प्रेम के उभय पक्ष—सयोग और वियोग का चित्रण किया है। 'ग्रथि' और 'पल्लव' में विरह की रागिनी गाई है। पर 'गुजन' और

वाद की रचनाओ मे सयोग के मादक तार बजते है। पत जी का प्रेम यौवन-जन्य है। उसमें अनग की व्यापकता की स्वीकृति भी है। पर उसकी एक मर्यादा है। यो एक-आध गीतो मे सयोग अत्यत स्थूल हो उठा है पर ऐसे चित्र कम है। प्राय कल्पना और अनुभूति के चिरसयोग ने उनके सयोग-चित्रण को वासना से बचाया है और उसे स्व.भाविकता की सुरभि दी है।

पत जी कलाकार होने के साथ ही एक मननशील चितक है। चिता की दृष्टि से वे उस सधि-प्रदेश के कवि है जहाँ धरती और आसमान, सत्ता, और छाया, स्थूल और सूक्ष्म, देह और मन, वस्तु और आत्मा, भूत और अध्यात्म, ऊर्ध्व और समदिक्, व्यक्ति और समाज, सुख और दुख, परस्पर मिलकर जीवन का उन्नयन करते है। जीवन के समस्त तत्त्वो का समन्वय उनका दर्शन है——यही उनका आदर्शवाद है।

पत जी आशावादी, विश्वासपरायण कवि है। जीव और जगत के उत्तरोत्तर विकास में उनका विश्वास है। दुख मे भी उन्हें सुख का आशा-आलोक मिलता है।

पत जी के कलापक्ष पर विशेषत शेली, कीट्स, वर्डसवर्थ, टेनीसन और रवीन्द्रनाथ का प्रभाव है। उनम शेली का 'व्योमविहार', कीट्स की 'मादकता' और टेनीसन की स्वरसाधना है।

उनके भाव पक्ष पर विशेषत हिन्दू विचार परम्परा, महात्मा बुद्ध, मार्क्स, गाधी, वर्डसवर्थ, रवीन्द्र और अरविन्द का प्रभाव पड़ा है। हिन्दू ब्रह्मवाद, बुद्ध के मध्यममार्ग, मार्क्स के आर्थिक प्रजातत्रवाद, गाधी जी की अहिंसा, वर्डसवर्थ के प्रकृतिसमर्पण, रवीन्द्र की बधनमुक्ति और अरविन्द की ऊर्ध्वचेतना के सयोग से उन्होने आज के सकटसकुल जीवन को एक नया दर्शन देना चाहा है। इसे 'पतवाद', 'ललितवाद' आदि सज्ञाएँ मिल चुकी है।

पत जी अनेक दृष्टियो से वर्डसवर्थ के निकट है। सुनने में यह अच्छा लगता है पर साथही यह एक भय का कारण भी है। वर्डसवर्थ युवावस्था मे एक प्रतिष्ठित कवि थे। धीरे-धीरे वे भावना से बुद्धि की ओर, हृदय से मस्तिष्क की ओर आने लगे और अधेड होते होते वे मात्र विचारक रह गये। पत जी के सबध में भी लोगो को यह भय होने लगा है। पर कल की कौन कहे ? पत जी अभी जीवित है और उनके हृदय का रस अभी सर्वथा सूखा नही है।

गुञ्जन—एक जीवन-काव्य

मै 'पल्लव' से 'गुजन' में अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि में आता हुआ पाता हूँ।

—सुमित्रा नन्दन पत

वर्ण्यवस्तु, निर्माणतत्त्व और स्थानक्रम

'गुञ्जन' पतजी की भावधारा के एक निश्चित दिशा-परिवर्तन का द्योतक है। 'पल्लव' तक पत जी रूप की भाषा के कवि थे, 'गुञ्जन' मे भाव और कल्पना के। 'पल्लव' में उन्होने सुषमा ढूढी थी,* 'गुञ्जन' में वह आत्मकल्याण का सधान कर रहे है—"क्या मेरी आत्मा का चिरधन ?" 'गुञ्जन' को कवि ने अपने प्राणो का उन्मन गुजन कहा है। वैसे, 'गुजन' में प्रकृति के अनेक सम्मोहक चित्र हैं, पर प्रकृति का लावण्य-सगीत 'गुजन' का मुख्य स्वर नही है। इसकी प्रणय-गीतिकाओ में अनुभूति का विपुल आकर्षण है, पर प्रेम 'गुञ्जन' की कला का अभिप्रेत नही है। 'गुजन' का प्रकृत विषय है मानव-जीवन। यहाँ कवि के चिता-केन्द्र में मानव बैठा है। मानव-जीवन के सुख-दुख का विवेचन और उसके दर्द के उपचार का सधान कवि का उद्देश्य है। 'गुजन' की कला मागलिक बनकर 'पल्लव' के सुषमा-लोक से 'गुजन' की चितन-भूमि में उतरी है।

---

* दिवस का इनमें रजत-प्रसार
उषा का स्वर्ण-सुहाग,
निशा का तुहिन-अश्रु शृगार,
साझ का नि स्वन राग,
नवोढ़ा की लज्जा सुकुमार,
तरुणतम-सुन्दरता की आग।

पल्लव, पृ० २

कवि की भावधारा के इस दिशापरिवर्तन के मुख्यतः तीन कारण हैं—

१। पिता का निधन और दीर्घ रुग्णता के उपरान्त कवि का स्वास्थ्य-लाभ ।

२। दर्शन-उपनिषद् का अध्ययन और अनुशीलन ।

३। तत्कालीन स्वातन्त्र्यान्दोलन और धरती के प्रति आकर्षण ।

पिता के निधन और दीर्घरुग्णता के उपरान्त प्राप्त होनेवाले स्वास्थ्य में कवि ने जन्म और मृत्यु के अक्षरों में लिखा मानव-जीवन का करुण-मधुर इतिहास पढ़ा । इस कठोर वास्तविकता से टकराकर 'पल्लव' और 'गुंजन' के बीच कवि का 'किशोर भावना का स्वप्न' टूट गया और उसका मन दर्शन के अन्तर्मुखचिंतन की ओर झुक आया ।* दर्शन-उपनिषद् के अध्ययन-मनन ने उसके रागतत्त्व में मंथन उत्पन्न किया । कुछ काल तक उसकी इच्छा में नैराश्य की उदासीनता छाती रही । 'जन्म के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी, वसंत के कुसुमित आवरण के भीतर पतझर का अस्थिपंजर ।'

'खोलता उधर जन्म लोचन,
मूँदती इधर मृत्यु क्षण क्षण ।'
'वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती, जीवन है भार ।'

किन्तु भारतीय दर्शन ने कवि के मन को 'अस्थिर वस्तु जगत् से हटाकर अधिक चिरन्तन भावजगत् में स्थापित किया' । अब वह क्षणिक के भीतर

* पंत जी जब-जब अस्वस्थ हुए हैं तबतब दर्शन की ओर उनका विशेष झुकाव हुआ है । १९४४ की अस्वस्थता के उपरान्त प्रकाशित 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्णकिरण' इसके साक्षी हैं ।

'चिर-अव्यय' को और जडता के भीतर 'ज्योतिर्मय जीवन' को देखने लगा है। उसे विश्वास है कि ससार की जडता में चेतन को ग्रहणकर उसकी अनुभूति को अपने भीतर विकसित करने की शक्ति है।* मन की ऐसी ही स्थिति में कवि ने गाया है—

जग के उर्वर-आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
बरसो लघु-लघु तृण, तरु पर
चिर-अव्यय, चिर-नूतन ! †

पृ० ७९

जीवन के प्रति उल्लासपूर्ण दृष्टिकोण

इसलिए 'गुजन' मे पल्लवकालीन 'करुणा-विलष्ट' भाव नही है,जीवन के प्रति एक नवीन उल्लासपूर्ण दृष्टिकोण है। वह जीवन को प्यार करने लगा है —

प्रिय मुझे विश्व सचराचर,
तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर, सुरवर
सुन्दर अनादि, शुभ सृष्टि अमर,

जग जीवन में उल्लास मुझे
नव आशा, नव-अभिलाष मुझे,

पृ० २६

---

* इस अनित्य जगत में नित्य जगत को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन में जैसे 'परिवर्तन' के रचनाकाल से ही प्रारम्भ हो गया था, 'परिवर्तन' उस अनुसधान का एक प्रतीक मात्र है। हृदयमथन का दूसरा मुख आप आगे चलकर 'गुजन' और 'ज्योत्स्ना'—काल की रचनाओ में पायेंगे।

—पत ('प्रतीक'—४ हेमत मेरा रचनाकाल)

† मृतिकार पात्र खनि भरि बारबार
तोमार अमृत ढाल दिवे
अविरत नाना वर्ण गध मय

—रवीन्द्र

अब उसकी निराशा पर आशा की नवल किरणें छा गई हैं और उसके संशय पर अतुल विश्वास। आज प्रत्येक पदार्थ में एक नवीन रूप-लावण्य है। फूलों में नई गंध है, पंखुड़ियों में नया रंग है, केसर में नया रस है, कंठ में नई रागिनी है और मन में नवल-धवल भाव हैं—

नव रूप, गन्ध, रँग, मधु, मरन्द,
नव आशा, अभिलाषा अमन्द,
नव गीत-गुंज, नव भाव-छन्द,—

पृ० ३३

कवि के क्लान्त मन के उदास मधुवन में जैसे एक नवल भाव-ऋतु आई है और उसके प्राण-भ्रमर जीवन-कुसुम-रस-संग्रह के लिए आतर-आकुल हो रहे हैं—

रे गूंज उठा मधुवन में
नव गुंजन, अभिनव गुंजन,
जीवन के मधु-संचय को
उठता प्राणों में स्पन्दन !

पृ० २७

आज कवि के प्राण विश्व-छवि पर विमुग्ध हैं। उसके रोम-रोम में सिहरन और अंग-अंग में पुलकन है। हर्षातिरेक के कारण सांसें शिथिल हो रही हैं और आँखों पर नमीं छा गई है।* आज धूल की धरती, मिट्टी की देह, सुख-दुःख का मन और जन्म-जरा-मृत्यु-युक्त जीवन का विकास-क्रम—सब कुछ सुन्दर है, परम सुन्दर।

---

* गुंजित भावों की मधुर-भीर,
झर झरता सुख से अश्रुनीर !
बहती रोओं में मलय-वात,
स्पन्दित-उर पुलकित पात-गात,

—पृ० ३३

सुन्दर मृदु-मृदु रज का तन
चिर सुन्दर सुख-दुख का मन
•
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर सुन्दर जग-जीवन !

——पृ० २९

इसके पहले उसने जीवन को वेदना और निराशा की दृष्टि से देखा था। उसकी दृष्टि में आशा प्रवचना थी और उच्छवास परिणाम।* वेदना ससार का सत्य और आँसू ससार का काव्य था।† उसकी कविता के वर्ण २ में 'उर की कम्पन', शब्द-शब्द में 'सुधि की दशन' और चरण चरण में आह थी।‡ वैसे,तब भी कभी-कभी वह सुख-दुःख और हास-अश्रु के सापेक्ष रूप

---

* प्रथम, इच्छा का पारावार,
सुखद-आशा का स्वर्गाभास,
स्नेह का वासती-ससार,
पुन उच्छ्वासो का आकाश !
——यही तो है जीवन का गान,
सुख का आदि और अवसान !

पल्लव, पृ० १७

† सिसकते हैं समुद्र से मन,
उमडते हैं नभ से लोचन,
विश्व-वाणी ही है क्रन्दन,
विश्व का काव्य अश्रु-कन !

——पल्लव, पृ० १७

‡ आह, यह मेरा गीला-गान !
वर्ण वर्ण है उर की कम्पन,
शब्द शब्द है सुधि की दशन,
चरण चरण है आह,

को देखता था, पर वह निश्चय नहीं कर पाता था कि यह समन्वय वरदान है अथवा अभिशाप।* 'गुंजन' में वह जीवन के मांगलिक क्षणों के बीच आ गया है जहाँ उसे क्षणिक सुख-दुःख के ऊपर छाये हुए चिरन्तन जीवन की सुखद अनुभूति होती है।

अस्थिर है जग का सुख-दुख
जीवन ही नित्य चिरन्तन!
सुख-दुःख के ऊपर मन का
जीवन ही रे अवलम्बन!

पृ० २०

पल्लवकाल की अभिशप्त वेदना अब आनन्द की साधना का अनिवार्य उपकरण बनकर वरेण्य बन गई है। वेदना मानव को वह दुर्लभ करुणा देती है जिसपर उसकी उदार आत्मा पलती है। दुःख मन को पूत भावों से भरता है।

दुःख इस मानव आत्मा का
रे नित का मधुमय भोजन,
दुःख के तम को खा-खाकर
भरती प्रकाश से वह मन।

—पृ० २०

कहा है कण कण करुण-अथाह,
बूंद में है बाडव का दाह!

—पल्लव, पृ० ११

* विरह है अथवा यह वरदान!
कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता, सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छंद हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है!

—पल्लव, पृ० १२

अत कवि जीवन की कठोरता से बचकर चलनेवाले अपने सादर्यो-पासक मन से, जो अभी-अभी खिन्न और उदास हो गया था, ससार के कष्टो के बीच वेदना की साधना कर पुनीत और कोमल बनने का आग्रह करता है —

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल
जग-जीवन की ज्वाला में गल
बन अकलुष उज्ज्वल औ' कोमल
तप रे विधुर विधुर मन ।

—पृ० ११

हाँ, स्वातन्त्र्य-आन्दोलन और छायावाद की वायव्य कल्पना और पलायनवृत्ति के प्रति नवीन चेतना की आग्रहपूर्ण प्रतिक्रिया ने भी कवि के मन मे पीडित जन-जीवन के सुख-दुख के लिए आकर्षण उत्पन्न किया ।

जीवन-सत्य का अध्ययन और उसकी अभिव्यक्ति

इस प्रकार 'पल्लव' का व्योमविहारी गीत-खग 'गुजन' में जीवन की डाली पर उतरा है । उसने जीवन-तरु की डाली-डाली की फेरी लगाई और पाया कि इस तरुवर की प्रत्येक टहनी में सुख के फूल और दुख के काटे समानराशि में वर्तमान है । अत इस जीवन-विटप की छाया में फूल चुननेवाले प्राणियो की चँगेरी भी सुख-दुख से भरी है । उनके आचल को जहाँ पराग ने सुवासित किया है वहाँ काँटो ने उसे झाँझर भी किया है—

देखूँ सबके उर की डाली—
सबमें कुछ सुख के तरुण-फूल
सबमें कुछ दुख के करुण-शूल
सुख दुख न कोई सका भूल ?

पृ० १७

अतिम पक्ति में कवि ने जीवन के कठोर सत्य का उद्घाटन किया है । सुख-दुख मानव-जीवन की ऐसी यथार्थता अथवा हकीकत है जिसे

भूलना-भुलाना सम्भव नही। सुख-दुःख की घाटियो से जिन्दगी का कारवाँ चलता है। हर्ष-विषाद के कगारो के बीच जीवन की भगीरथी बहती है। इस ससार के आँगन में ऊषा की अरुणिमा और सध्या की कालिख है, सुख की खिलखिलाती धूप और दुःख की मडराती छाया है, मिलन का आह्लाद और विरह का विषाद है। जीवन के अधरो पर मुस्कुराहट है, उसके नयनो में बरसात है—

यह साझ-उषा का आगन,
आलिगन विरह-मिलन का,
यह हास-अश्रुमय आनन
रे इस मानव-जीवन का !

—पृ० १८

फिर जीवन मे सुख-दुःख दानो परस्पर एक प्रगाढ आलिगन में इस प्रकार आबद्ध है कि एक का दूसरे से हटाया नही जा सकता—

हैं बँधेवि छोह-मिलन दो
देकर चिर स्नेहालिगन ।

पृ० १८

जीवन के तत्त्व और कवि निष्कर्ष

अत इस धूप-छाँही ससार के आँगन में जो उतरता है उसे इसके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, जन्म-मृत्यु सबका भागी बनना पडता है। इस भाँति कवि ने 'गुजन' में जीवन के तत्त्वो का विवेचन किया है। इस विवेचन-विश्लेषण के उपरान्त वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दुःखो पर पश्चात्ताप करने से श्रेयष्कर यही है कि हम सुख दुःख दोनो को स्वीकार करके चलें। न दुःख में विह्वल हो और न सुख में पागल। हम सुख को जीवन का उपभोग्य समझकर ग्रहण करें और दुःख को जीवन का अपरिहार्य अग समझकर वरण करें। नाविक की तरह जीवन की उमगित तरगो पर जलविहार करें, सुख लूटें, पर साथ ही ममज्ञ बनकर, जीवन की तह में उतरकर विषाद का भी ज्ञान प्राप्त करें—

जीवन की लहर-लहर से
हँस खेल-खेल रे नाविक !
जीवन के अन्तस्थल में
नित बूड-बूड रे भाविक !

——पृ०

जो आसन्न दु ख को भूलकर अहर्निश सुख में विभोर रहते हैं वे विपत्ति आने पर टूट जाते है । किन्तु जो जीवन-मर्मज्ञ है, जो सुख-दु ख के राज को जानते हैं, वे दुर्दिन को भी हंस-हँसकर काट लेते हैं । जीवन-यापन के मर्म का यह मोती तो जीवन की रत्नगर्भा में प्रवेश करने ही से मिलता है । यह जीवन के प्रति कवि का बौद्धिक दृष्टि-कोण है ।

जीवन के दर्द का मनोवैज्ञानिक उपचार

कवि जीवन के और निकट आता है, बडी सूक्ष्मता से उसका पर्यवेक्षण करता है और उसकी सबसे विषम समस्या का एक व्यावहारिक समाधान उपस्थित करता है। वह कहता है कि सकट-सकुल जगत की वेदना, पग-पग पर उपस्थित होनेवाली विभीषिका और चरण--चरण पर बिछे हाहाकार को देखकर--जीवन को जगत के आघातो से लहूलुहान देखकर ससार के प्राणियो का करुणाभिभूत और विचलित हो जाना स्वाभाविक है । किन्तु यह समस्या का निदान तो नही है। रोना व्यर्थ है क्योंकि इससे दु ख का भार तो हल्का होता नही । जब नियति पर हमारा स्वल्प अधिकार भी नही है, जब हम भाग्य की लिपि को मेट नही सकते तब भाग्य पर रोना व्यर्थ और बेमानी है । यह बेमानी ही नही, बेजा भी है। यह निरर्थक ही नही, हानिकर भी है क्योंकि आँसू की धारा जीवन के वेदना-सागर को और बढा देती है, घटा नही पाती । जीवन स्वत दु खो से भरा है । जीवन का जुआ कंधो पर ढोना योंही कठिन है । फिर दु ख-दु ख चिल्लाने से तो दु ख-दर्द की दुनिया में जीना और भी दूभर हो जायगा । अत विषादपूर्ण जीवन को आह्लादपूर्ण बनाने का एक मात्र व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक उपाय यही है कि हम अतर की वेदना को अतर में ही दबाकर हँसता हुआ मुखडा लेकर ससार

के सामने आवें, स्वय हँसे तथा औरो को हँसाएँ। हम दु खो पर मुस्कुराना सीखें। जीवन की कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने की यही कुञ्जी है, यही सूरमापन है, यही मर्दानगी है—

आँसू की आखो से मिल
भर ही आते ह लोचन
हँसमुख ही से जीवन का
पर हो सकता अभिवादन ।

पृ० १९

यह कवि का जीवन के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टि-कोण है ।

जीवनकी अस गति, उसका कारण और दार्शनिक समाधान

कवि का निसर्गप्रिय मन जब एकबार मानव की ओर खिच आया तब मानव-जीवन की असगतियो और विपत्तियो पर उसका चिंतन-मनन करना स्वाभाविक है । मानव-जीवन का लक्ष्य सुख है। मानव जीवनभर सुख के लिए ही प्रयत्नशील रहता है। फिर भी उसे दु ख भोगना पडता है। यह कैसी असगति है? कवि जीवन के इस विरोधाभास पर विचार करता है और पाता है कि हमारे दु खो के मूल में तृष्णा है—हमारी 'अति-इच्छा' है । असयमित अति-इच्छाएँ—सीमित साधनो के इस ससार में—कभी पूरी नही होती, इसीलिए हमारा असतोष है, हमारा हाहाकार है—

बह जाता बहने का सुख,
लहरो का कलरव, नर्तन,
बढने की अति इच्छा में
जाता जीवन से जीवन ।

पृ० २८

यह ठीक है कि हम इच्छा को जीवन से सर्वथा अलग नही कर सकते किन्तु यदि इच्छा सृष्टि का प्राण है तो साधन आत्मा की पूजी है । हमारा जीवन, हमारी प्रत्येक क्रिया किसी न किसी इच्छा, काम अथवा आकाक्षा

से उत्प्रेरित है और हमारी आत्मा, आत्मा का प्रत्येक निर्देश सयत इच्छाओ की साधना अथवा सयम की भावना से अनुप्राणित है । इच्छा के कारण जीवन गतिशील और प्राणपूर्ण है, सयम के कारण आत्मा सदा प्रसन्न और शात । अत सम-इच्छाओ की साधना में, सयमित जीवन व्यतीत करने में ही तन और मन, काया और आत्मा दोनो प्रसन्न और सुखी हो सकती हैं । मात्र भोग-विलास के लिए जीना तो जीवन को धोखा देना है, यह तो विपरीत विचार है । सदेच्छाओ की पूर्ति के निमित्त जीना ही सच्चा जीना है—

इच्छा है जग का जीवन,
पर साधन आत्मा का धन,
जीवन की इच्छा है छल,
इच्छा का जीवन जीवन ।

पृ० २४

वे असत इच्छाएँ जो मन में क्षणभर के लिए उत्पन्न होती है और दूसरे ही क्षण अपने प्रति विरक्ति उपजाकर विलीन हो जाती है अथवा वे असयमित इच्छाएँ जिनकी पूर्ति जीवन में नही हो सकती—दोनो जीवन के उद्देश्य की सिद्धि में, परमसुख की प्राप्ति में विघ्न डालती है क्योकि एक के कारण अशाति और दूसरे के कारण निराशा उत्पन्न होती है और अशाति एव निराशा साधना में शिथिलता उत्पन्न करती है । अत सयमित इच्छाओ की साधना में ही मानव के सुख-स्वर्ग का निवास है—

ये आधी अति इच्छाएँ
साधन में बाधा-बधन,
साधन भी इच्छा ही है
सम इच्छा ही रे साधन ।

पृ० २४

यह जीवन के प्रति कवि का दार्शनिक दृष्टिकोण है ।

सुखमय जीवन के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी आकाक्षाओ को मर्यादित रक्खे, अपनी परिस्थिति स सतुष्ट हो और विश्व के व्यापक जीवन के साथ तादात्म्य अनुभव करे--

कँप कँप हिलोर रह जाती--
रे मिलता नही किनारा !
बुद् बुद् विलीन हो चुपके
पा जाता आशय सारा

पृ० ३१

सुख-दु ख की सापेक्षता और कवि का समन्वयवाद

अत मे वह सुख और दु ख के बीच समझौता करता है और जीवन के प्रति एक समन्वयवादी उदार दृष्टिकोण उपस्थित करता है। उसकी दृष्टि मे सुख और दु ख सापेक्ष और अन्यान्याश्रयी है। एक के अभाव मे दूसरे की कल्पना नही हो सकती। दु स तो सुख का माग प्रशस्त करता है। दावाग्नि से वन जल जाता है किन्तु इसके बाद जले हुए ठूठ वृक्षो से नयी कोपले फूटती है जिनके फलस्वरूप वह वन पहले से भी अधिक सघन हो जाता है। पृथ्वी के ग्रीष्मकालीन ताप से जल बादल बनकर आकाश मे छाता है। ये बादल जब बिजली के दात कटकटाकर गरजते है तब एक भयानक दृश्य उपस्थित हो जाता है। किन्तु इस तर्जन-गर्जन के उपरान्त जब इन्ही बादलो से रसवन्ती की बूदे चूने लगती है तब धरती निहाल हो जाती है। बरसाती फुहार पृथ्वी को नयी जिन्दगी देती है। इसी प्रकार दु ख से दग्ध होने के बाद मनुष्य के सारे विकार जल जाते है और वह अकलुष होकर पूर्व से शुद्धतर, मृदुलतर नवीन आनन्द का अनुभव करता है। दु ख के बाद आनेवाला आनन्द बडा रुचिकर होता है। अत दु ख प्रारम्भ मे कष्टकर किन्तु अतत कल्याणकर है--

दुख-दावा से नव अकुर,
पाता नव जीवन का वन,

करुणार्द्र विश्व की गर्जन
बरसाती नव-जीवन---कण !

पृ० २२

दु खो के आधिक्य की भाँति सुखो का अतिरेक भी जीवन के वास्तविक आनन्द के प्रतिकूल है क्योकि मनुष्य विविधता-पसन्द प्राणी है और एक वस्तु का दीघ सयोग उसके जीवन में एकरसता (monotony) उत्पन्न करता है जो उदासीनता का कारण है---

जग पीडित है अति-दुख से
जग पीडित रे अति-सुख से ।

पृ० १६

जिसतरह शहद में अपने परो को भीगो कर भ्रमर सुखपूवक गा नही सकता उसी तरह केवल उपभोग का जीवन बिताकर व्यक्ति वास्तविक आनन्द नही पा सकता क्योकि वह शिथिल, क्रियाहीन और पगु हो जाता है । जीवन में आनन्द के हेतु जिस उमग और उत्साह की अपेक्षा होती है उसका उसमें सवथा अभाव होता है । इसी प्रकार दीर्घ वेदना से पीडित होकर जब हृदय अत्यत पीडित हो जाता है तब उसकी वाणी मूक हो जाती है । हृदय-बीन के तार ढीले पड जाते है और विपची निर्वाक् हो जाती है । अत जिसतरह मधुर सगीत के निस्सरण के लिए सितार के तारो को कौशल से साधा जाता है ताकि न वे अधिक कडे हो न अधिक ढीले उसी तरह जीवन-बीन से आनन्द का सगीत नि सृत करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसकी मीड को सुख-दु ख के कोमल-कठोर स्पर्शों से साधें ताकि सुख के आधिक्य के कारण न वह अधिक कडी हो और न दु ख के आधिक्य के कारण अधिक ढीली---

अपने मधु में लिपटाकर
कर सकता मधुप न गुजन,
करुणा से भारी अतर
खो देता जीवन कम्पन ।

पृ० २०

अत मानव जीवन की पूर्णता समान अनुपात में सुख और दुख की उपस्थिति में ही है। इसलिए कवि चाहता है कि—

मानव जग म बँट जावें

दुख सुख से औ सुख दुख से।

पृ० १६

सुख-दुख के इस सम-विभाजन में मानवो के बीच धन और निधनता के समाजवादी विभाजन का तात्पर्य भी स्पष्ट हो जाता है। पर वैसे सुख-दुख के विवेचन में 'गुजन' का कवि आत्मकल्याण तक ही सीमित रहा है।* उसका दृष्टिकोण वैयक्तिक है।† 'गुजन' में कवि की दृष्टि अन्तर्मुखी रही है। 'गुजन' के पहले वह परिस्थितियो के वश अपनी प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी बनाने को बाध्य नही हुआ था। 'गुजन' मे उसकी बहिर्मुखी प्रकृति, सुख दुख में समत्व स्थापित कर, अतर्मुखी बनने का प्रयत्न करती है।‡ इस प्रयत्न में वह किंचित बौद्धिक भी हो उठा है क्योकि 'गुजन' में हृदय 'वस्तु जगत के जीवन' से भोजन न पाकर बुद्धि स सहायता मागता है।

'गुजन' के जीवन-दशन की सीमा

आते कैसे सूने पल, जीवन में ये सूने पल

. . .

खो देती उर की वीणा झकार मधुर जीवन की

आदि

---

* 'गुजन' और 'ज्योत्स्ना' में मेरी सौदर्य-कल्पना क्रमश आत्म-कल्याण और विश्वमगल की भावना को अभिव्यक्त करने के लिए उपादान की तरह प्रयुक्त हुई है।

—पत (आधुनिक कवि-भूमिका)

† 'ज्योत्स्ना' में मैंने जिस सत्य को सार्वभौमिक दृष्टिकोण से दिखाने का प्रयत्न किया है 'गुजन' में उसी को व्यक्तिगत दृष्टिकोण से कहा है। 'गुजन' के प्रगीत मेरी व्यक्तिगत साधना से सबद्ध है।

—पत (प्रतीक ४ हेमत, मेरा रचना काल)

‡ पत (आधुनिक कवि की भूमिका)

पर 'गुजन' का कवि दर्शन की ओर झुका है, विज्ञान की ओर नही क्योकि 'गुजन' की चिता ओर समस्या वैयक्तिक है, उसमें मानव के सामूहिक सघर्षो और समस्याओ का चित्रण नही है । फिर 'गुजन' में जीवन-सत्य को किञ्चित तटस्थता से देखा गया ह । यदि नीचे की पक्तियो मे 'निस्तल-जल' को जीवन और 'मछली' को सत्य मान लिया जाय तो ये पक्तियाँ पत जी के दृष्टिकोण को स्पष्ट-सी कर देती है—

सुनता हूँ इस निस्तल जल में
रहती मछली मोती वाली,
पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जल-माली ।

पृ० ७१

वैसे, यत्रतत्र 'गुजन' में कवि की सामाजिक विचारधारा का भी परिचय मिलता है जिसका विकसित रूप वाद की रचनाओ में आया ।

व्यक्ति-सापेक्ष समाज

यहाँ जिस समाज या विश्व का चित्रण हुआ है वह व्यक्ति-सापेक्ष ही है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज के सुख में व्यक्ति का सुख है और ससार का सामाजिक जीवन तभी सुखी हो सकता है जब उसके परिवार के विभिन्न सदस्यो में परस्पर विश्वास और प्रीति हो । जीवन की कटुता दूर कर धरती पर स्वग उतारने के लिए यह आवश्यक है कि हम आशावादी और विश्वास परायण हो । मानव का व्यक्तिगत सुख भी आशा और

आशा, प्रेम और विश्वास

विश्वास पर ही अवलबित है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हृदय की गति सासो के स्वाभाविक आगमन और निष्क्रमण पर टिकी है—

सुन्दर विश्वासो से ही
बनता रे सुखमय जीवनअ,
ज्यो सहज-सहज सासो से
चलता उर का मृदु स्पन्दन ।

पृ० २८

विश्वास जीवन की सास है। विश्वास का जीवन समृद्धि का जीवन है। शका का जीवन नास का जीवन है। विश्वासपरायण, आशावादी व्यक्ति जीवन के क्षणिक सुख-दुख के उन्माद-विषाद से चचल-विह्वल न होकर सदा प्रसन्न रहता है। आशा और विश्वास से भरा जीवन-सागर सुख-दुख के कगारो को अपने में डुबाकर दोनो ओर लहराता रहता है। अत 'आत्मा के चिरधन' की खोज में निकला कवि का मन विश्वास का आधार चाहता है—विश्वास सम्पूर्ण जीवन पर, जीवन की प्रत्येक वस्तु की उपादेयता पर—

विश्वास चाहता है मन,
विश्वासपूर्ण जीवन पर,
सुख-दुख के पुलिन डुबाकर
लहराता जीवन सागर।

पृ० २०

दर्शन की भाषा में यह ब्रह्मात्मैक्य या कैवल्य की अवस्था है। इस भाँति पत जी ने 'गुजन' में सुखमय वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के के लिए आशा, विश्वास और प्रेम को आवश्यक माना है। यह कवि का जीवन के प्रति व्यक्तिसापेक्ष सामाजिक दृष्टिकोण है।

ससार के प्रत्येक प्राणी और वस्तु से प्रेम करना, जीवन के प्रत्येक क्षण को आशा और विश्वास से देखना जीवन के सिद्धान्त-वाक्य है, सुखमय जीवन के नियम है। ये नियम देखने सुनने में तो सरल-साधारण प्रतीत होते है किन्तु उनका निर्वाह करना, जीवन में उन्हें बरतना अत्यंत कठिन है। विश्व के प्रेम-सम्बन्धो के बीच जो स्वाभाविक 'मुक्ति' मिलती है उसका अनुभव अत्यत मधुर और प्रिय होता है किन्तु इस सहज मुक्ति की साधना करना, इसकी शर्तो और जिम्मेदारियो को निभाना अत्यत दुष्कर है—

सहज मुक्ति

जीवन के नियम सरल है
पर है चिरगूढ सरलपन;

हैं सहज मुक्ति का मधु-क्षण
पर कठिन मुक्ति का बंधन ।

पृ० २८

'गुंजन' के सत्य का स्वरूप अत 'गुजन' में पत जी का उद्देश्य व्यक्ति के आत्मोत्कर्ष का उपकरण ढूँढना है—'क्या मेरी आत्मा का चिरधन', उसकी भौतिक अथवा सामाजिक मान्यताओं का मूल्यांकन करना नही । 'गुजन' में मानव-जीवन के जिस सत्य का उद्घाटन हुआ है वह वास्तविक सत्य (Factual truth) नही, आदर्श सत्य (Ideal truth) है जिसका सबध परिणाम से होता है । अत यहा उन्होने वैयक्तिक सुख-दुःख से ऊपर उठकर वेदना को आत्मोत्कर्ष१ तक

१ 'यह कहा जाता है कि मेरी कविताओ से सुन्दरम् और शिवम् से भी बडे लक्ष्य सत्यम् का बोध नही होता है, साथ ही उनमें यह अनुभूति की तीव्रता नही मिलती, जो सत्य की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है । यह सच है कि व्यक्तिगत सुख दुःख के सत्य को अथवा मानसिक सघर्ष को मैने अपनी रचनाओ में वाणी नही दी है, क्योकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है । मैंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है । 'गुजन' मे 'तप रे मधुर मधुर मन,', 'मैं सीख न पाया अबतक सुख से दुःख को अपनाना' आदि अनेक रचनाएँ मेरी इस रुचि की द्योतक है । सत्य के दो रूप है—शराबी शराब पीता है यह सत्य है, उसे शराब नही पीना चाहिए, यह भी सत्य है । एक उसका वास्तविक (फैक्चुवल) रूप है, दूसरा परिणाम से सबध रखनेवाला । मेरी रचनाओ में सत्य के दूसरे पक्ष के प्रति मोह मिलता है, वह मेरा सस्कार है, आत्म-विकास (सब्लिमेशन) की ओर जाना। .. मेरे पल्लव काल की रचनाओ मे, तुलनात्मक दृष्टि से, मानसिक सघर्ष और हार्दिकता मिलती है, और बाद की रचनाओ में आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की इच्छा ।'

—पंत ('आधुनिक कवि' की भूमिका)

खीच लाया है। दूसरे शब्दा में हम इस कल्पना का सत्य कह सकते है।१

जीवन-दर्शन पर बाह्य प्रभाव

'गुजन' का जीवन-दर्शन मुख्यत सनातन हिन्दू विचार-परम्परा, गीता के कर्मयोग, महात्मा बुद्ध के 'मध्यममार्ग', रवि ठाकुर की बधन-मुक्ति और वर्डसवर्थ के प्रकृति-सिद्धान्त से प्रभावित है। पतजी जहाँ सुख-दुख को क्षणिक और माया मानते है —

अस्थिर है जग का सुख दुख
जीवन ही नित्य चिरतन

—वहाँ वे प्राचीन हिन्दू विचार का अनुमोदन करते है।२ जहाँ वे दुख को तृष्णामूलक मानते है और इच्छा को सयमितकर 'इन्द्रिय निग्रह' का आदेश देते है वहाँ वे 'गीता' में प्रतिपादित कर्मयोग का अनुशीलन करत है। जहाँ सुख-दुख दोनो को स्वीकार करके चलने का आग्रह करते ह वहा वे महात्मा बुद्ध का समथन करते है—मध्यम पथ ब्रज। इसी भाँति 'तरी मधुर मुक्ति ही बधन' में रविबाबू की पक्ति 'असख्य बधन माझे लभिव महानन्दमय मुक्तिर स्वाद' की प्रतिध्वनि है। और, जहाँ पत जी यह कहते है कि कवल मनुष्य ही दुखी है, प्रकृति नही, मनुष्य ने अपने को कृत्रिम बनाकर दुखपूर्ण बना लिया है, उसे जीवन की सीख प्रकृति से ग्रहण करनी चाहिए— —

१ मै कल्पना के सत्य को सबसे बडा सत्य मानता हूँ और उसे ईश्वरीय प्रतिमा का अश भी मानता हूँ।. . .. मेरा विचार है कि वीणा से लेकर ग्राम्या तक, अपनी सभी रचनाओ में मैने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है।

—पत (आधु० पृ० २९)

२ गीता में स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के लक्षण—

दुखेष्वनुद्विग्न मना सुखेषु विगतस्पृह ।
वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

बन की सूनी डाली पर
सीखा कली ने मुस्काना
मै सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना

पृ० २१

—वहाँ वे वर्डसवर्थ के प्रकृति-सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं।

प्रभावों का परिणाम छायावादी कवियो में पत जी ही बाह्य प्रभावो स सर्वाधिक प्रभावित हुए है। उनकी चिन्ताओ ने भी विभिन्न मतवादो की कृतज्ञता स्वीकार की है।१ इससे उनके जीवन-दशन का स्वतत्र अस्तित्व कुछ अस्पष्ट हो गया है और कही कही विवादी सुर भी सुनाई पडता है।

जीवन-दर्शन का भारतीय स्वरूप पर पत का यह जीवन-दशन मूलत भारतीय है। वह माम्सवादी नही है क्योकि 'गुजन' का कवि सुख-दुख का मात्र आथिक मूल्याकन नही करता। उसकी दृष्टि में सुख-दुख का सम्बन्ध मन से अधिक है। हाँ उसके इस दशन में भूत और अध्यात्म के समन्वय का आभास अवश्य मिलता है।२ वह ईश्वर

---

१ मेरी कल्पना को जिन जिन विचार धाराओ से प्रेरणा मिली है उन सबका समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है।

—पत (आधु० पृ० २९)

२ यही समन्वय पत जी के जीवन दशन का मुलाधार है—

'जिस प्रकार पूव की सभ्यता अपने एकाकी आत्मवाद और अध्यात्मवाद के दुष्परिणामो से नष्ट हुई उसी प्रकार पश्चिम की सभ्यता भी अपने एकाकी प्रकृतिवाद, विकासवाद और भूतवाद के दुष्परिणाम से विनाश के दलदल में डूब गयी। पश्चिम के जडवाद की मासल प्रतिमा में पूर्व के अध्यात्म-प्रकाश की आत्मा भरकर एव अध्यात्मवाद के अस्थिपजर में भूत या जडविज्ञान के रूप-रगो को भरकर हमने आने वाले युग की मूर्ति का निर्माण किया है।' ——'ज्योत्स्ना' (पत)

म आस्था रखता है और साथ ही वस्तुसत्य और आत्मसत्य के समन्वय से, बहिर्जीवन और अन्तर्जीवन के सगठन से एक नूतन सस्कृति, एक विकसित लोक-जीवन का निर्माण भी करना चाहता है —

चाहिए विश्व को नवजीवन ।

'मैं आध्यात्म और भौतिक, दोनो दर्शनो के सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ हूँ । पर भारतीय दर्शन की, सामतकालीन परिस्थितियो के कारण जो एकात परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है और मार्क्स के दर्शन की, पूँजीवादी परिस्थितियो के कारण, जो वर्गयुद्ध और रक्तक्राति में परिणति हुई है—ये दोनो परिणाम मुझे सास्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नही जान पड़े ।'

— पत (आधु० पृ० २२)

'मानव-जीवन एव समाज का रूपान्तर करने तथा पृथ्वी पर मानव स्वर्ग बसाने का वस्तु-स्वप्न नवयुग की भावात्मक देन है । मध्ययुग के दार्शनिको ने जिस प्रकार वाह्य जीवन की अवहेलना कर जगत को माया या मिथ्या कहा है और आधुनिक भूतदर्शन जिसप्रकार अब जीवन-सत्य की उपेक्षाकर उसे बहिर्जीवन के अधीन रखना चाहता है, 'युगवाणी' में इन दोनो एकागी दृष्टिकोणो का खडन किया गया है ।

'लोक-कल्याण के लिए जीवन की बाह्य (सप्रति राजनीतिक आर्थिक) और आभ्यतरिक (सास्कृतिक-आध्यात्मिक) दोनो ही गतियो का सगठन करना आवश्यक है । मात्रा और गुण दोनो का सतुलन होना चाहिए ।

'मैंने मार्क्सवाद के लोक-सगठन रूपी व्यापक आदर्शवाद और भारतीय दर्शन के चेतनात्मक ऊर्ध्व आदर्शवाद दोनो का समन्वय करने का प्रयत्न किया है । . पदार्थ (मैटर) और चेतना (स्पिरिट) को मैंने दो किनारो की तरह माना है जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तरसत्य प्रवाहित एव विकसित होता है ।

'अपने देश में जन-साधारण के मन में जीवन के प्रति जिस खोखले वैराग्य की भावना घर कर गई है उसका विरोधकर नवीन सामाजिक

कवि ने भौतिक इच्छाओं की भूमि से साधना की भूमि में आना चाहा है—'ना मुझे इष्ट है साधन'। वह भौतिक-वाद की सकीर्ण सीमाओं का उल्लघनकर सर्वात्मवाद के लोक में पहुचता है—

दर्शन का आध्यात्मिक विस्तार

आत्मा है सरिता के भी
जिससे सरिता है सरिता

आत्मा के इस विस्तार में 'सोऽहमस्मि' का अनुभव होता है। इस-लिए ससार का प्रत्येक प्राणी उसे प्रिय है—

प्रिय मुझे विश्व सचराचर
तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर, सुरवर।

प्रकृति ब्रह्म की विवृति है। मानव 'सहज सत्य' और 'चिर अभिनव' है—

तुम सहज सत्य सुन्दर हो,
चिर आदि और चिर अभिनव।

नारी पुरुष की पूरक है। आत्मा ब्रह्म का अश है—'अनन्त का मुक्त मीन '।

पर दर्शन के इस आध्यात्मिक सगम पर भी वह जीवन की गति को भूल नही सका है। 'गुजन' का कवि उस सधि-प्रदेश का गायक है जहाँ शिव और सुन्दर, अध्यात्म और भूत, उर्ध्व और समदिक्, धरती और आसमान मिलते है। जीवन की कल्पना उसने एक नदी के रूप में की है जिसकी दो गतियाँ है—एक दैनिक और दूसरी शाश्वत। नदी एक ओर प्रतिदिन अपने उपकूलो से खेलती है और दूसरी ओर प्रतिक्षण-प्रतिपल सागर में

परिस्थितयों के आधार पर नवीन मानसिक जीवन प्रतिष्ठित करने पर जोर दिया गया है। भौतिक विज्ञान के विकास के कारण भू-रचना के जिस भावात्मक दर्शन का इस युग में आविर्भाव हुआ है उसे युगदर्शन का एक मुख्य स्तम्भ समझना चाहिए।'

—पंत (युगवाणी पर एक दृष्टि प्रतीक, शरद्)

निमज्जिन भी होती रहती है । इसी प्रकार मानव-जीवन का एक छोर धरती में बँधा है और दूसरा अनन्त से । जो केवल ऐहिक बना रहता है वह अपने को रुग्न कर लेता है और जो केवल चरम लक्ष्य की चिंता में अपने चारों ओर के सौंदय को नहीं देखता वह भी अनावश्यक रूप से अपने जीवन को नीरस बना लेता है ।

क्या यह जीवन ? सागर में
जलभार मुखर भर देना ।
कुसुमित-पुलिनों की क्रीड़ा—
ब्रीड़ा से तनिक न लेना ?
सागर-संगम में है सुख,
जीवन की गति में भी लय,
मेरे क्षण-क्षण के लघु-कण
जीवन-लय से हो मधुमय ।१

—पृ० १४

जीवन-काव्य का मूल्यांकन

'गुंजन' एक कोमल-प्राण, दर्शनोन्मुख किन्तु जनभीरु कवि का जीवन काव्य है । इसके गीत जीवन के कोलाहल में बैठकर नहीं, एकान्त के चिन्तापूर्ण क्षणों में लिखे गये हैं । इसलिए इनमें बौद्धिकता अधिक और हार्दिकता कम है । इसमें मानव के सामाजिक संघर्षों का सत्य नहीं है । 'गुंजन' कवि की व्यक्तिगत साधना का परिणाम है जिसमें वह अन्तर्द्वन्द्वों के ऊपर उठने की चेष्टा करता है । 'गुंजन' का सत्य कवि-कल्पना का आदर्श सत्य है । पंत जी ने उचित ही इसे अपने प्राणों का उन्मन गुंजन कहा है । पर इसका कलेवर मानव-जीवन के अश्रु-हास के तारों से बुना है । इसके गीत

१ तुलना—

भोग का कर्म कर्म का भोग
यही जड़ का चेतन आनन्द

—प्रसाद

विश्ववेदना के आसू स धुले, आत्मानुभूति की मुस्कयान मे स्नात और विश्व-संगीत से झंकृत हैं। 'गुंजन' के कवि ने आजके संकट-संकुल भौतिकतावादी यन्त्रयुग को भूत और अध्यात्म की मांगलिक भावनाओं से नूतन जीवन दर्शन गढने का संदेश दिया है। मांगलिक काव्य कला की सीमा है। कवि के प्राणों का उन्मन 'गुंजन'––

यह एक बूंद जीवन का
मोती-सा सरस, सुघर हो।
यह एक मुकुल मानस का
प्रमुदित, मोदित मधुमय हो।

———

दार्शनिक विचार

निवेदन किया जा चुका है कि 'पल्लव' का कवि 'सुन्दरम्' का सादय-करुणाभिभूत कवि था, 'गुंजन' का कवि 'सुन्दरम्' में 'शिवम्' को समाहित करके चला है। 'पल्लव' का कवि दृश्य जगत् के रूप रंग का कवि था, 'गुंजन' का कवि अनुभूति-लोक की भाव-कल्पना का कवि है। पर उसका विषय 'आत्मा का चिरधन' ही है, बाह्यजीवन के सामूहिक संघर्ष नहीं। संक्षेप में उसका क्षेत्र दर्शन है, विज्ञान नहीं। वीणा-पल्लव-काल में स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के अध्ययन ने पंत जी के प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास में अभिवृद्धि की थी और गुंजन-काल में दर्शन शास्त्र और उपनिषदों ने उन्हें विशेष प्रभावित किया था। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि छायावाद का एक दार्शनिक पक्ष भी था (चाहे उसका अध्यात्म कल्पनाप्रसूत और कलात्मक ही रहा हो) जिसने तत्कालीन कवियों को सर्वचेतनवादी बनाया था। अतः आवश्यक है कि हम दर्शन के प्रस्थान-त्रय——जीव, जगत् और ब्रह्म——तथा उनके मध्यवर्ती तत्त्वों——जीवन, मृत्यु, सुख-दुःख आदि के सम्बन्ध में कवि के विचार जानें।

सर्वचेतनवादी सर्वात्मवादी

'गुंजन' के अध्ययन से जो पहली बात स्पष्ट होती है वह यह है कि पंत जी सर्वचेतनवादी हैं। गुंजन के कवि की दृष्टि में प्रत्येक पदार्थ चेतनता और स्पंदन से युक्त है। उसके लिए सरित् प्रवाह जड़ जलधार नहीं है, वह उस आत्मा से युक्त है जो चेतना का नियंत्रण करती है——

आत्मा है सरिता के भी,
जिससे सरिता है सरिता,
जल जल है, लहर लहर रे
गति गति, सृति सृति चिर-भरिता।

——पृ० १४

कहीं २ तो उसने वनफूलों में मानव की अपेक्षा अधिक समुन्नत चेतना देखी है—

कुसुमों के जीवन का पल
हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान, मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा !
बन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना ।

—पृ० २१-२२

न केवल मनुष्य ही इच्छाओं से उद्वेलित होता है वरन् जलाशय की शांत छाती में भी असंख्य इच्छा-उर्मियाँ उग-मिटकर उसे आन्दोलित करती रहती है—

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर
हो उठता चंचल, चंचल ? —पृ० १२

पंत जी की दृष्टि में सम्पूर्ण प्रकृति ही ब्रह्म की विवृति
प्रकृति ब्रह्म है । प्रकृति ब्रह्म के समान ही चिरंतन और
की विवृति शाश्वत है ।

शाश्वत नभ का नीला-विकास,
शाश्वत शशि का यह रजत-हास,
शाश्वत लघु-लहरों का विलास ।

—पृ० १०८

चाँदनी ब्रह्म की भाँति दृष्टि का नहीं अनुभूति का विषय है । वह अनिर्वचनीय है । कबीर ने बूंद और समुद्र के पारस्परिक सम्बन्ध के द्वारा अद्वैतता सिद्ध की थी । पंत ने चाँदनी को देखकर उसी शैली में कहा—

वह है, वह नहीं, अनिर्वच,
जग उसमें, वह जग में लय,

——पृ० ९१

'गुंजन' में भारतीय दर्शन ने कवि के मन को अस्थिर वस्तु जगत् से हटाकर चिरंतन भावजगत् में स्थापित किया है।

चिरंतन भावजगत् की अनुभूति

अतः यहाँ उसे यह संसार क्षणभंगुर के 'बुद्बुदों के व्याकुल संसार' के रूप में दिखाई नहीं पड़ता जैसा वह पहले जान पड़ता था। अब वह अपने भीतर चिर अमरता छिपाए दीखता है। 'गुंजन' का कवि चिरंतन भावजगत् का गायक है।

जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
बरसो लघु-लघु तृण, तरु पर
हे चिर-अव्यय चिर-नूतन !

——पृ० ७९

यह जगत ब्रह्म की भाँति ही शुभ, सुंदर, अनादि और अमर है——

जीव मानव

'सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर'। सृष्टि सृजनशील है, इसलिए अजर है। यह सुन्दर है, इसलिए इसका प्रत्येक जीव प्रिय है। मानव उन सुन्दर जीवों में सुन्दरतम है। मानव, अरे वह तो ब्रह्म की सम्पूर्ण सुन्दरता और अमरता लेकर उतरा है——

पृथ्वी की प्रिय तारावलि !
जग के बसन्त के वैभव !
तुम सहज सत्य सुन्दर हो,
चिर आदि और चिर अभिनव !

——पृ० ३६

मानव अमृत-पुत्र है।

ऊपर हमलोगों ने देखा है कि पंत जी सर्वात्मवादी हैं। प्रत्येक

आत्मा

पदार्थ में उन्होंने आत्मा का अधिवास देखा है। आत्मा एक वास्तविक सत्ता है और है वह ब्रह्म का ज्योतिपिंड——

'अनन्त का मुक्त मीन'। इसलिए वह ब्रह्म की तरह ससार के भीतर रहकर भी निर्लिप्त है—बधनमुक्त। वह सासारिक कदम से पकिल नही होती, मलिन नही होती। वह दुख मे विकल, और निराशा से उदास भी नही होती। प्रसन्नता उसका धर्म है। वह उज्ज्वल, धीर, शुद्ध और प्रबुद्ध है—

चिर अविचल पर तारक अमन्द !
जानता नही वह छद-बन्ध !
वह रे अनन्त का मुक्त-मीन अपने असग-सुख में विलीन,
स्थित निज स्वरूप मे चिर नवीन।

निष्कम्प-शिखा-सा वह निरुपम भेदता जगत-जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र, वह सम !

—पृ० ८६

आत्म और जगदर्शन

अपने इस रूप को भूल जाने के कारण मनुष्य अपने को ब्रह्मेतर समझने लगता है। सत सुन्दर दास के शब्दो में मनुष्य आत्मतत्त्व की ओर दृष्टि न डालकर पचभूतो को देखता है—'सूधी ओर न देखई, देखै दर्पण पृष्ठ'। इसी 'देहाध्यास' से उत्पन्न भ्रम उसके समस्त दुखो का कारण है। नाम और दृश्य के वाह्यावरणो के भ्रम में पडा व्यक्ति अपने को शेष सृष्टि से भिन्न एकाकी और अकिचन समझता है और दुखी एव भयभीत होता है। पर, ज्योही वह रूप और नाम के आवरण को भेदकर आत्मा में झाँकता है त्योही उसे सर्वत्र एक ही तत्त्व का प्रसार मिलता है और इस आत्मप्रसार में उसे अपूर्व आनन्द मिलता है। 'एक तारा' शीर्षक कविता में पत जी ने भी ससार को आत्मा के माध्यम से देखने का आग्रह किया है—

गुजित अलि-सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन-अन्धकार,
हलका एकाकी व्यथा-भार !

जगमग जगमग नभ का आँगन लद गया कुन्द कलियों से घन
वह आत्म और यह जग-दर्शन ।

—पृ० ८६

पंत जी ईश्वर पर विश्वास करते हैं—'ईश्वर पर चिर विश्राम मुझे'। उनका ईश्वर एक सार्वभौमिक, अरूप-अगीत सत्ता है। अखिल ससृति के चल-अचल सभी उसी के संकेतों में परिचालित है—

ब्रह्म

मैं चिर उत्कंठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मंत्र मुग्ध किसके बल।

—पृ० १२

वह सत्ता संसार में रहकर भी, जल की अनन्त राशि में छिपी मछली की तरह, मुक्त, अदृश्य और अनिर्वचनीय है—

सुनता हूँ, इस निस्तल-जल में
रहती मछली मोती वाली,

—पृ० ७१

इस प्रकार कवि ने जीव, जगत् और ब्रह्म में अभेद-सा स्थापित किया है। कहा जा सकता है कि वह अद्वैतवादी हैं। किन्तु नहीं, वह अद्वैतवादी नहीं रहस्यवादी-सा है क्योंकि अद्वैतवादी को अपने अस्तित्व का बोध नहीं होता, और रहस्यवादी अपने अस्तित्व का तिरस्कार नहीं कर पाता। पंत में भी अपने अस्तित्व का तिरस्कार नहीं है। ब्रह्म की उपलब्धि में वह अपने अस्तित्व को विलीन करना नहीं चाहता।

अद्वैतवाद बनाम रहस्यवाद

ब्रह्म की उपलब्धि

सुनता हूँ, इस निस्तल-जल में
रहती मछली मोतीवाली,

पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जल-माली ।
आएगी मेरे पुलिनो पर
वह मोती की मछली सुन्दर
मैं लहरो के तट पर बैठा
देखूँगा उसकी छवि जी भर ।

—गु० ७१

भक्ति का योग

वह स्वय उसके पास जाना नही चाहता, वरन् उसे ही अपने पास बुलाना चाहता है । यह भावना भक्त कवियो की प्रेम-भावना के निकट है । अत पत जी का रहस्यवाद शुष्क अद्वैतवाद से भिन्न और भक्ति म युक्त है ।

वैसे 'गुजन' में विशुद्ध भक्ति का एक पुराना गीत भी सग्रहीत है—

चरण-कमल में अर्पण कर मन,
रज-रजित कर तन,
मधुरस-मज्जित कर मम जीवन
चरणामृत-आशय में ।
नीरव तार हृदय म—

—गु० ८०

वैष्णवीयता और मुक्ति-कल्पना

इन पक्तियो में जैसे निर्गुण साकार-सा हो गया है और कवि की भक्ति वैष्णव धम की करुणा से सिक्त हो उठी है । जब पत जी बधनोवाली मुक्ति के प्रति आसक्ति प्रगट करते है और गधहीन को गधयुक्त तथा अरूप का स्वरूपपूरित बनाने का आग्रह करते है तब भी उनकी भावना वेदान्तवाद की अपेक्षा वैष्णव भक्तिवाद के निकट होती है ।—

तेरी मधुर मुक्ति ही दी बधन,
गध हीन तू गध युक्त बन,

निज अरूप में भर स्वरूप, मन ।
मूर्त्तिमान बन निर्धन ।

—पृ० ११

सुख-दुख, जन्म-मृत्यु आदि

मध्यवर्ती तत्वों अर्थात् सुख, और दुःख, जन्म और मृत्यु, बंधन और मुक्ति, प्रेम और सौन्दर्य आदि पर पिछले अध्याय में विचार हो चुका है (देखिए पृ०) । साथ ही हम उन बाह्य प्रभावों पर भी विचार कर चुके हैं जो पंत जी के जीवन-दर्शन पर पड़े हैं (देखिए पृष्ठ ६६)।

'गुजन' मे प्रकृति-चित्रण

खोल कलियो न उर के द्वार
दे दिया उसको छबि का देश
बजा भौरो ने मधु के तार
कह दिये भेदभरे सदेश ।

—पत

प्रकृति काव्य की आदि प्रेरणा

पत जी को कविता की आदि प्रेरणा प्रकृति से मिली, जिसका श्रेय कवि की जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश (अल्मोडा——जिसे गाधी जी ने भारत का स्विजरलेंड कहा था) और कालिदास के अमर प्रकृति-काव्य 'मेघदूत' को है ।

प्रकृति के साहचर्य का यह सम्मोहन (Hypnotism) 'वीणा' से 'स्वर्ण किरण' तक किसी न किसी रूप में वर्तमान रहा है । 'वीणा'-काल में वह काया की माया से प्रकृति की छाया को विशेष महत्त्व देता रहा है । कवि के सामने यह समस्या रही है कि——

छोड द्रुमो की शीतल छाया,
तोड प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दू लोचन ?

'गुजन' के चितन-लोक में उतरते समय भी वह 'पल्लव' के सुषमा-लोक से अञ्जलिभर निसर्ग का पराग लेता आया है । रूप-चित्रण की

गुञ्जन रूप-चित्रण

दृष्टि से 'नौका विहार' और 'एकतारा' पत जी की सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-गीतिकाओ में है । निदाघ की चाँदभरी रात में कवि काला कॉकर की गगा में चपला पर वीचि-विहार करने निकला है । गगा क्षीणधार होकर रेत में पडी

है, जैसे कोई कृशकाय ऋषि-कन्या। निम्बित चन्द्रमा उसका देदीप्यमान मुखमडल है और लहराती लहरें उसकी बिखरी केश-राशि। नीलाम्बर उसका धानी अचल है और भवर रेशमी साड़ी की सिकुड़न।

तापस-बाला गगा निर्मल शशिमुख से दीपित मृदु-करतल,
लहरें उर पर कोमल कुतल।
गोरे अगो पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर।
चचल अचल सा नीलाम्बर।
साड़ी की सिकुडन सी जिस पर, शशि की रेशमी-विभा से भर,
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर।

—पृ० १०१

यह वह स्थल है जहा कवि की लेखनी चित्रकार की तूलिका बन जाती है और चित्रकार की तसवीर बोलने लगती है। शब्द पिघलकर रेखाएँ बन जाते है और रेखाएं शब्द बनकर मुखरित हो उठती है। और, यदि रूप के साथ गति का मणिकाचन सयोग देखना चाहते हो तो नीचे की इन पक्तियो को देखिए जिनमें शब्द, चित्र और गति एकरस हो रहे है —

रूपात्मकता और गत्यात्मकता का सयोग

लो, पालें उठीं, उठा लगर।
मृदु मद मद, मन्थर-मन्थर, लघु तरणि, हसिनी-सी सुन्दर
तिर रही खोल पालो के पर।

—पृ० १०२

पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश के साहचर्य ने कवि को सौंदर्य, स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाया। अत उनके प्रकृति-चित्रण में इन तीन तत्त्वो—सौंदर्य, स्वप्न और कल्पना—की प्रधानता है।

सौंदर्य, स्वप्न और कल्पना

प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही पत जी को अधिक लुभाया है। सुन्दर जीवन और 'कोमल मनुज कलेवर' की कल्पना करनेवाले तथा सघष और जन-रव

से बच कर चलनेवाले नियमप्रिय कवि में स्वभावत प्रकृति का वह उग्र रूप नहीं मिलता जो संघर्षप्रिय, निराशा और असन्तोषवादी कवि को आज अधिक खींचता है। पंत जी की प्रकृति में वह्नि, उल्का और झंझा' के दर्शन नहीं होते। पार्वत्य प्रदेश का अधिवासी होकर भी पंत जी 'मधुवन' के कवि रहे हैं और उनके मधुवन में 'लालस सालस वातास' डोलती है, 'कलों का हास' और 'तरल तुहिन-वन का उल्लास' बमोल बिकते हैं। उनके आसमान में 'चारु हासिनि' बैठी है और उनकी धरती पर शशि-राशि सुषमा बिछी हुई है—

प्रकृति का सुन्दर, कोमल मृदुल रूप

> आज गृहवन उपवन के पास
> लोटता राशि राशि हिम हास।
>
> —पृ० ८६

पंत जी में वर्ड्सवर्थ के समान प्रकृति का कोमल-मृदुल, शान्त-सुन्दर स्वरूप देखेंगे, कोलरिज की प्रकृति का खूनी पंजा नहीं।

पंत जी के प्रकृति-चित्रण में कोमलता के साथ वर्ण-विपुलता (Colourfulness) भी है। वर्ण-परिज्ञान (Sense of colour) में पंत और महादेवी समकक्ष हैं यद्यपि पंत जी में कल्पना की मात्रा अधिक है और महादेवी में कारीगिरी की। आम की उजली-पीली मंजरियों पर बहुरंगी भ्रमरों का मदांध होकर मंडराना देखिए—

कोमलता के साथ वर्ण-विपुलता

> रुपहले सुनहले आम्र-बौर
> नीले पीले औ, ताम्र भौर
> रे गंध-अंध हो ठौर-ठौर
> रे पांति-पांति में चिर-उन्मन
> करते मधु के बन में गुञ्जन।
>
> —पृ० १०

प्रकृति-निरीक्षण की नारी कला

पत जी स्वभाव से सुन्दरम के कवि है। पत जी के प्राण सौदयवादी हैं। कवि के सौदयजीवी मन ने अपनी सौदय बुभुक्षा की परितृप्ति के लिए एक ओर प्रकृति के मधुवन की ओर देखा है और दूसरी ओर 'निखिल छबि की छबि' नारी की ओर। एक ओर 'फूलो का हास' उन्हे अनुरक्त करता है और दूसरी ओर 'कपोलो की मदिरा'। पत जी जब प्रकृति को निहारते है तो उनके दृगो मे 'विश्व सुषमा का ससार' लिए नारी छा जाती है और जब वे नारी का ध्यान करते है तब उनके सामने प्रकृति की राशि-राशि सुन्दरता बिखर जाती है। जब वे शरद की झिलमिल चाँदनी को देखते है तब एक शर्मिली छुई-मुई-सी दुलहिन सामने खडी हो जाती है और जब वे 'भावी-पत्नी' का ध्यान करते है तब उनकी आँखो में 'व्योम बाला का शरदाकाश' छा जाता है। पत जी की प्रकृति नारीमयी है और नारी प्रकृतिमयी। कही उन्होने प्रकृति को स्वतत्र सजीव सत्ता रखनेवाली नारी—देवी, मा, सहचरी—के रूप में चित्रित किया है और कही प्रकृति से तादाम्य अनुभव करते समय स्वय अपने को भी नारी के रूप में चित्रित किया है। यहा 'तन्वि गगा' ऋषिकन्या है और 'चाँदनी' 'तापसी विश्व की बाला'। प्रकृति मालिन बनकर गजर बेचने आई है—

लाई हूँ फूलो का हास
लोगी मोल, लोगी मोल ?

—पृ० ७५

उससे 'लोगी मोल, लोगी मोल' कहलाकर कवि ने क्रयी (कवि या साधक) को भी जैसे नारी मान लिया है।

मानवीकृत चेतन प्रकृति

छायावाद के प्रजापतियो में मानवीकृत चेतन प्रकृति के अभिनव रूप, सबसे अधिक मात्रा में, पत जी ने ही उपस्थित किए है। 'चाँदनी' का एक दृश्य ही उदाहरण के लिए अलम् होगा। नदी के कछार पर पडी चाँदनी जैसे

निश्चेष्ट होकर सो रही है। मद मलयानिल उसकी साँस है, लहरे उसकी छाती की धडकन।

वह सोई सरित पुलिन पर
सासो में स्तब्ध समीरण,
केवल लघु-लघु लहरो पर
मिलता मृदु-मृदु उर-स्पन्दन।

—पृ० ८८

लीजिए, उसकी नीद उचट गई। झिलमिलाती चाँदनी जैसे आँखे मीच रही है। अरे, वह लजवन्ती तो ससार के नयन-तीरो से घिरकर, शर्म से अपने-आप में गडी-सी जा रही है—

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छबि की छुई मुई-सी
मृदु मधुर-लाज से मर-मर।

—पृ० ८०

तथाकथित जड प्रकृति कितनी प्राणवती है!

प्रकृतिपरक रहस्यवाद

पत जी आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रकृति-रहस्य-वाद के प्रवर्त्तक है। उनके लिए सरित-प्रवाह जड जलधार नही है वरन् उसमें चेतना का नियत्रित करनेवाली चिर-विकासपूर्ण आत्मा का अस्तित्व है—

आत्मा है सरिता के भी,
जिससे सरिता है, सरिता,
जल जल है, लहर लहर रे,
गति गति, सृति, सृति, चिरभरिता।

—पृ० १४

जिस तरह शैली ने 'सौदय लक्ष्मीस्तव' में प्रकृति के भीतर एक महती शक्ति की चचल, मधुर और रहस्यमय छाया देखी है उसी तरह पतजी ने

भी प्रकृति में लोकोत्तर सत्ता का 'मौननिमन्त्रण' सुना है। पत जी के हृदय-नयन सरसी के हृदय में उठनवाली उर्मियो में अनन्त अभिलाषाओं का उन्मेष देखते है और उसकी शांति में अनन्त का प्रशान्त सकेत——

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर
हो उठता चचल चचल ?

म चिर उत्कठातुर
जगती के अखिल चराचर
ये मौन-मुग्ध किसके बल।
——पृ० १२

प्रकृति के अणु-अणु मे व्याप्त इस अनन्त अनिर्वचनीय सत्ता ने कवि को विस्मय-विमुग्ध किया है। यह विस्मय-भावना रहस्यवाद का प्रस्थान-बिन्दु है। प्रकृति ने कवि को अनन्त का जो सकेत-दर्शन कराया है उसे पाकर कवि के प्राण नाच उठे है और उसके प्राणो का आनन्द गीति में फूट पडा है——

आज शिशु के कवि को अनजान
मिल गया अपना गान !
खोल कलियो ने उर के द्वार
दे दिया उसको छबि का देश,
बजा भौंरो ने मधु के तार
कह दिये भेद-भरे सदेश,
——पृ० ७३

"'विहग के प्रति' कविता में कवि ने अव्यक्त प्रकृति के बीच, चैतन्य के सान्निध्य से, शब्द-ब्रह्म के सचार या स्पन्दन (Vibration) से, सृष्टि के अनेक रूपात्मक विकास का बडा ही सजीव चित्रण किया है"[१]——

१ श्री रामचन्द्र शुक्ल

मुक्त पखो म उड दिनरात
सहज स्पन्दित कर जग के प्राण,
शून्य नभ म भर दी अज्ञात,
मधुर जीवन की मादक तान ।

पत और वर्ड्सवर्थ

पत जी ने वड्सवर्थ की तरह प्रकृति के बीच बैठकर मम की वाणी कही है। पर पतजी और वड्सवर्थ क प्रकृति-चित्रणो में एक मौलिक अतर है। वड्सवथ प्रकृति के आभ्यन्तरिक सौदर्य के साथ उसके वाह्य रूपा का वर्णन भी मनायाग से करते हैं। पत जी के लिए प्रकृति दृष्टि से अधिक अनुभूति का विषय है। उनक लिए—

वह खडी दृगो के सम्मुख
सब रूप, रेख, रँग ओझल,
अनुभूति मात्र-सी उर में
आभास शान्त, शुचि उज्ज्वल ।

—पृ० ८१

पतजी ने स्वय स्वीकार किया है कि प्रकृति ने उन्हें सौदय, स्वप्न और कल्पना—जीवी बनाया है। स्वप्न में चमचक्षु तो देखते नही, देखते हैं उपचेतन के कल्पना-नयन। हाँ, इस स्वप्नावस्था में भाव-प्रदशन की विपुल क्षमता होती है।

अनुभूति-वेष्ठित प्रकृति-चित्रण

'सान्ध्यतारा' को लीजिए। उसमें गाँव उसी प्रकार शात है जिस प्रकार वड्सवर्थ का लदन।

नीरव सध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त
पत्रो के आनत अधरो पर सो गया निखिल वन का मर्मर
ज्यो वीणा के तारो में स्वर।

—पृ० ८८

इन पक्तियो में कवि आँखा की धरती से उठकर अनुभूति के सौंदय-लोक मे आ गया है जहा उसके चमचक्षु विभोर

कल्पना-रजित होकर बन्द हो गए है और अनुभूति सजग एव

प्रकृति छवि कल्पना उद्दात्त हो उठी है क्योंकि वृक्ष के पत्तो पर सोनेवाले 'निखिल बन के मर्मर' को वीणा के तारो में सोनेवाले स्वर में रूपायित किया गया है। इस साम्य में कल्पना का दुलभ विकास हुआ है। पत जी के प्रकृति-चित्रण में शेलो की भाँति कल्पना की पर्याप्त मात्रा है। शेलो की 'लावा' चिडिया

पत और शेली

की तरह पत की चाँदनी भी अनेक भावनाओ और कल्पनाओ से विभूषित है—

जग के अस्फुट स्वप्नो का
वह हार गूथती प्रतिपल
चिर सजल-सजल करुणा से
उसके ओसो का अचल ।

—पृ० ८९

पत की प्रकृति कीट्स की मादकता

छायावादी कवियो पर अग्रेजी के स्वच्छदवादी कवियो की मादकता की भी छाप पडी है। पत जी की प्रकृति में हम कीट्स की-सी मादकता पाते है—

तरुण विटपो से लिपट सुजात,
सिहरती लतिका पुलकित-गात,

—पृ० ६०

बिखरती गृह-बन मलय-समीर
सास, सुधि, स्वप्न, सुरभि, सुख, गान,
मार केशर-शर मलय-समीर
हृदय हुलसित कर, पुलकित प्राण ।

—पृ० ५९

प्रकृति और उद्दीपन विभाव — प्रकृति का यह मादक रूप प्राय वहाँ मिलता है जहाँ प्रकृति का प्रयोग उद्दीपन विभाव के रूप में किया गया है, अथवा जहा कवि अपनी भावनाओं को प्रकृति के ऐन्द्रिक चित्रो में रूपायित करना चाहता है।

प्रिय लालस-सालस वातास,
जगा रोओं म सौ अभिलाष।

शिथिल, स्वप्निल पखडिया खोल
आज अपलक कलिकाएँ बाल,
गूजता भूला भौंरा डोल
सुमुखि! उर के सुख से वाचाल!

आज क्या प्रिय, सुहाती लाज?
आज रहने दो यह गृह-काज!

—पृ० ५२

अलकृत प्रकृति रीति-पद्धति — और पतजी की यह प्रकृति शायद ही कही निराभरण हो। वह प्राय अलकृत रहती है। कही २ तो अलकारप्रियता के नीचे प्रकृति-वर्णन की सहज सरसता दब-सी गई है और एक-आध स्थान पर रीतिपद्धत्ति का भी ध्यान आने लगता है।

आज बन में पिक, पिक में गान
विटप में कलि, कलि में सुविकास
कुसुम में रज, रज में मधु, प्राण!
सलिल में लहर, लहर में लास।

प्रकृति उपमानोपकरण — पर ऐसे स्थल बहुत कम हैं। प्राय पत जी का प्रकृति-चित्रण आकर्षक हुआ है। अप्रस्तुत के रूप में भी प्रकृति का जो उपयोग हुआ है वह परम्परागत होकर भी किञ्चित नवीन है—

(क) नवेली बेला उर की हार,
मोतिया मोती की मुसकान
मोगरा कण फूल-सा स्फार,
अँगुलिया मदन बान की बान ।

—पृ० ५८

(ख) अरुण-अधरो की पल्लव-प्रात
मोतियो-सा हिलता-हिम-हास ।
इन्द्रधनुषी पट से ढँक गात
बाल-विद्युत का पावस-लास,

—पृ० ८१

प्रकृति-दर्शन का क्रम-विकास

पतजी ने सर्वप्रथम प्रकृति में सौदर्य देखा था और उसमे वे पराभूत हुए थे। आगे उस सौदर्य ने एक भाव-लोक की ओर सकेत किया। कवि ने वृक्षावलि की हरितनाभ-रेखा के उस पार एक छाया-बन देखा—

दूर उन खेतो के उस पार,
जहा तक गई नील-झकार,
छिपा छाया-बन में सुकुमार
स्वर्ग की परियो का ससार

—पृ० ७४

इस तरह कवि का सौदर्य-प्रधान प्रकृति-प्रेम भाव-प्रधान होने लगा। पर देखते ही देखते जीवन की कठोर घटनाओ से टकराकर उनका 'किशोर भावना का स्वप्न' भी टूट गया। वे सुन्दर से शिव की भूमि में उतर आए। उनका प्रकृति-प्रेम भी अब विचारप्रधान हो उठा। प्रकृति के माध्यम से कवि अपने विचारो की अभिव्यक्ति करने लगा। मधु और मधुप के दृष्टान्त के द्वारा कवि ने लाघव के साथ यह सिद्ध किया है कि दुखो के आधिक्य की भाति सुखो का अतिरेक भी जीवन के वास्तविक आनन्द के प्रतिकूल है। जिस तरह शहद में अपने परो को भीगोकर

प्रकृति आत्माभिव्यजन का साधन

भ्रमर सुखपूर्वक गा नहीं सकता उसी तरह केवल उपयोग का जीवन बिता-कर व्यक्ति वास्तविक आनन्द को नहीं पाता क्योंकि वह शिथिल, क्रिया-हीन और पंगु हो जाता है। जीवन के आनन्द के हेतु जिस उमंग और उत्साह की अपेक्षा होती है उसका उसमें सर्वथा अभाव हो जाता है—

अपने मधु में लिपटा पर
कर सकता मधुप न गुंजन
करुण से भारी अंतर
खो देता जीवन कम्पन।

—पृ० २०

इसी भाँति दावाग्नि और बादल के उदाहरणों के द्वारा उन्होंने बड़ी सफाई के साथ यह सिद्ध किया है कि दुःख आरम्भ में कष्टकर है किन्तु अन्ततः कल्याणकर है—

दुख-दावा से नव-अंकुर
पाता जग जीवन का बन
करुणार्द्र विश्व की गर्जन
बरसाती नव जीवन-कण।

—पृ० २२

प्रकृति से विचार-प्रेरणा

कहीं प्रकृति से विचारों की प्रेरणा भी मिली है। कवि जीवन के सुख-दुख पर विचार करता है। उसी समय उसकी दृष्टि निर्जन जंगल के एकांत-निभृत कोने में खड़े उपेक्षित वनवृक्ष की सूनी डाल पर खिलनेवाली कली पर पड़ती है, जो सदा मुस्कुराती रहती है। कवि को लगता है कि प्रकृति मानव की समस्याओं का निदान—दुख-दर्द का उपचार लिए खड़ी है और वह प्रकृति की पाठशाला में जीवन की कला की सीख ग्रहण करने का आग्रह-सा करता है—

बन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुस्काना

मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना ।

—पृ० २२

हँसमुख प्रसून सिखलाते
पल भर भी तो हँस पाओ
अपने उर की सौरभ से
जग का आँगन भर जाओ ।

—पृ० ३१

कहीं-कहीं प्रकृति चित्रों में कवि ने अपनी भावनाओं का सौंदर्य मिला दिया है और कहीं-कहीं निजी भावनाओं को ही प्राकृतिक सौंदर्य का परिधान दे दिया है । ऐसे स्थलों पर भी 'पंत जी की प्रतिभा बहुत ही व्यंजक और रमणीय साम्य' उपस्थित करती है—

खुल खुल नव नव इच्छाएँ
फैलाती जीवन के दल
गा-गा प्राणों का मधुकर
पीता मधु रस परिपूरण ।

कहीं-कहीं वे प्रकृति को दार्शनिक भावों से युक्त कर देते हैं । 'चाँदनी' शीर्षक कविता की—

वह है, वह नहीं अनिर्वच
जग उसमें, वह जग में लय,
साकार-चेतना सी वह
जिसमें अचेत जीवाशय ।

—पृ० ९१

—आदि पंक्तियों में दर्शन ने चाँदनी के सहज सौंदर्य को अभिभूत कर लिया है ।

प्रकृति-चित्रण : समासोक्ति पद्धति 'गुंजन' शीर्षक कविता में पंत जी ने काव्य-लोक में आए हुए नवयुग को वसन्त का रूप दिया है—

वन-वन, उपवन—
छाया उन्मन गुञ्जन,
नव वय के अलियों का गुञ्जन।

—पृ० ९

यह वह समासोक्ति पद्धति है जिसे जायसी आदि ने अपनाया था। 'विहग के प्रति'—शीर्षक कविता भी समासोक्ति पद्धति पर आश्रित एक प्रकृति-गीति है जिसमें 'विहग' एक पक्षी होने के साथ ही अरूप चेतन सत्ता का प्रतीक है। वह दूर विजन वन अथवा अंतरिक्ष के अमरधाम का वासी है। वह झुरमुट का मुखरित रखता है। वह जडजीवन की चरम चेतना है।

विजन-वन के ओ विहग-कुमार!
आज घर-घर रे तेरे गान,
मधुर-मुखरित हो उठा अपार
जीर्ण-जग का विषण्ण-उद्यान!

रिक्त होते जब-जब तरु-वास
रूप धर तू नव नव तत्काल,
नित्य-निनादित रखता सोल्लास
विश्व के अक्षय-वट की डाल।

—पृ० ८१-८३

अन्योक्ति पद्धति

इसी भाँति छायावादी कवि को 'विहगम' मानकर पंत जी ने एक सुन्दर अन्योक्ति लिखी है—

तेरा कैसा गान,
विहगम! तेरा कैसा गान?
न गुरु से सीखे वेद-पुराण,
न षड्दर्शन, न नीति-विज्ञान,
तुझे कुछ भाषा का भी ज्ञान,
काव्य, रस, छन्दों की पहचान?

न पिक-प्रतिभा का कर अभिमान ।
मनन कर, मनन, शकुनि-नादान !

—पृ० १०५

इस प्रकार पतजी की प्रकृति निरीक्षण की प्रतिभा सौदय से भाव की ओर ओर भाव से ज्ञान-दर्शन की ओर बढ आई है।

एक बात ओर । 'वीणा'-काल के पत नारी-सौदय मे प्रकृति-सौदर्य का विशेष महत्त्व देते थे। परवर्ती काल मे नारी प्रधान हो चली । अब कवि के लिए मानवेतर मे मानव सुन्दर लगने लगा है—'मानव तुम सबसे सुन्दरतम'। अत पहले जहाँ मानव प्रकृति से अभिभूत था, वहा अब प्रकृति मानव से अभिभूत होने लगी है। 'गुजन' की कविताएँ कवि के आकर्षण-विकर्षण की समस्त कहानी को लेकर उपस्थित है।

'गुजन' के प्रणय गीत

नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम-विहग का वास

—पत

नारीकला

पतजी सुकुमार मूक्तियो के कोमल-प्राण कवि है। उन्होने प्रकृति को नारी के रूप में देखा है और निसर्ग से तादात्म्य अनुभव करते समय स्वय अपने को भी नारी के रूप में चित्रित किया है। उन्होने 'कोमल मनुज कलवर' की कल्पना की है और 'अविराम प्रम की बाँहो' में मुक्ति पाई है। उन्होने पुल्लिग शब्दो का स्त्रीलिग प्रयोग किया है। कहा जा सकता है कि पत जी की कला नारी कला (Faminine Art) है।

प्रकृति और प्रेम क कवि

पत जी के प्राण सोदयवादी है। उनकी सौदर्य-भावना दो रूपो में—प्रकृति और नारी-प्रेम में—प्रगट हुई है। उनके सौदर्यजीवी मन ने अपनी सौदय-बुभुक्षा की परितृप्ति के लिए एक ओर प्रकृति के उन्मद मधुवन की ओर देखा है और दूसरी ओर प्रम-कलशी लिए 'निखिल छबि की छवि' लावण्यमयी नारी की ओर। एक ओर 'फूलो का हास' उन्हे अनुरक्त करता है और दूसरी ओर 'कपोलो की मदिरा'। पत जी जब प्रकृति को देखते है तब उनके दृगो में 'विश्व सुखमा का ससार' लिए नारी आ बैठती है और जब वे नारी को निहारते है तब उनके सामने प्रकृति की राशि-राशि सुषमा बिखर जाती है। जब वे चाँदनी को देखते है तब उनके सामने एक शर्मिली छुई-मुई-सी दुलहिन खडी हो जाती है और जब वे 'भावी पत्नी' का ध्यान करते हैं तब उनके नयनो में व्योमबाला का शरदाकाश' छा जाता है। अत पत जी की प्रकृति नारीमयी और नारी प्रकृति-मयी है। कहा जा सकता है कि पत जी प्रकृति और प्रेम के कवि है।

प्रेम-भावना का विकास-क्रम हाँ, माता की स्नेहमयी गोद से वंचित एकाकी किशोर को प्रकृति ने ही पहले आकर्षित किया, बाद में नारी ने। 'वीणा' में कवि ने प्रकृति की निर्दोष सुषमा को नारी की सौंदर्य-माया से विशेष महत्त्व दिया था। कविता से उसने आग्रह

वीणा काल किया था कि वह वसंत बनकर आवे, कामिनी बनकर नहीं—

नव वसन्त ऋतु में आओ,
नव कलियों को विकसाओ,
प्रेयसि कविते ! हे निरुपमिते !

× × ×

इन नयनों को समझाओ,
इन्हें न लड़ना सिखलाओ,

अज्ञाता की केश-राशि में
इन्हें न कस-कस बँधवाओ !
आओ, कोकिल बन आओ,
ऋतु पति का गौरव गाओ,
प्रेयसि कविते ! हे निरुपमिते !

—वीणा, पृ० १

स्वयं बाला से भी उसका ऐसा ही आग्रह था—

बालकाल में जिसे जलद से
कुमुद कला ने किलकाया,
तारावलि ने जिसे रिझाया,
मृदु-स्वप्नों ने सुहलाया,
मारुत ने जिसकी अलकों में
चञ्चल-चुम्बन उलझाया
उसे आज अपनी ही छबि में

केवल बाले ! न लुभा ले,—
उनका भी तो है कुछ भाग !

—वीणा, पृ० ११

कवि के सामने एक समस्या थी कि—

छोड द्रुमो की मृदु छाया, तोड प्रकृति से भी माया,
बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दू लोचन ?
भूल अभी से इस जग को !
तजकर तरल तरगो को, इन्द्रधनुष के रगो को,
तेरे भ्रू-भगो से कैसे बिंधवा दू निज मृग-सा मन ?
भूल अभी से इस जग को ।[1]

---

१ इन पक्तियो की आलोचना करते हुए निराला जी ने 'पत जी और पल्लव' शीर्षक निबध में लिखा था—

"कवि 'बाला' के 'बाल जाल' से छूटकर 'द्रुमो की मृदु छाया' में तथा 'प्रकृति की माया में' जीवित रहना चाहता है । यहाँ भी कला से विपरीत रति कराई गई है, जो निहायत अस्वाभाविक हो गई है । अगर 'बाला' के 'बाल-जाल' से छूटने का निश्चय है, तो छूटकर जहाँ ठहरिए, उसे दिखलाइए कि वह स्वभावत 'बाला' के 'बाल-जाल' से ज्यादा आकर्षक है । अगर छूटे तो 'द्रुमो की मृदु छाया' में क्या करने गए ? प्रकृति से माया जोडने की क्या आवश्यकता थी ?—प्रकृति में ही रहे, तो उत्कृष्ट को छोडकर निकृष्ट को क्यो ग्रहण किया ? —प्रकृति में 'बाला' से मधुर और क्या होगा ?—'बाला' को छोडकर प्रकृति से परे जाते, तो जरूर आकर्षक बन जाता । यहाँ कला का पतन है—उसके स्वाभाविक विकास की प्रतिकूलता का दोष आ गया है । यदि कोई कहे कि इस तरह एक विशाल प्रकृति में 'बाला' के 'बाल-जाल' को छोडकर कवि अपने को मिला देना चाहता है, तो उत्तर यह है कि उस तरह प्रकृति को 'बाला' के 'बाल-जाल' से स्वभावत मधुर होना चाहिए । जहाँ 'बाला' के 'बाल जाल'

पर इन पंक्तियों में नारी के प्रति वितृष्णा का भाव नहीं है। युवक कवि इतना विरस नहीं हो सकता। उसे नारी के सम्मोहन का भय है। यह मोह और आत्मरक्षा की चेष्टा ही नारी के प्रति उसके आकर्षण का द्योतक है। आज नारी पहली बार केश-पाश और भ्रू-चाप लेकर उस व्यक्ति के सामने खड़ी हुई है जिसे प्रकृति ने अपनी गोद में पालकर स्वप्न और कल्पना जीवी बनाने के साथ ही जनभीरु भी बना दिया है और जो अबतक तरल तरंगों से खेलता, इन्द्रधनुष की सेज पर सोकर स्वप्न देखता तथा यौवन से अधिक शैशव को महत्त्व देता रहा है।' स्वभावतः वह इस अपरिचिता से किञ्चित भयभीत होता है। उससे मिलने में उसे बड़ा संकोच होता है। वह उससे कतराना चाहता है। पर क्या ऐसा हो सका? 'वीणा' के बाद ही 'प्रेम' में उलझी 'ग्रंथि' निकली जो बहुतों की दृष्टि में

ग्रंथि और परवर्ती काल

कवि के अनुभूत प्रेम की वास्तविक ग्रंथि है जो समाज के संशय के कारण अनखुली रह गई। 'ग्रंथि' के अतिरिक्त 'उच्छ्वास' और 'आँसू' भी कवि के प्रेम के गीले गीत हैं।

मिलते हों वहाँ मनुष्य के स्वभाव को द्रुमों की शीतल छाया कब पसन्द होगी ?"

१ (क) विटप-डाल में बना सदन,
पहन गेरुवे रँगे वसन,
विहग-बालिका बन, इस बन को
तेरे गीतों से भर दूँ—
सन्ध्या के उस शान्त-समय !
—वीणा, पृ० २

(ख) चित्रकार ! क्या करुणाकर फिर
मेरा भोला बालापन,
मेरे यौवन के अंचल में,
चित्रित कर दोगे पावन ?

'वीणा' की यह भावना 'ग्रंथि' में शायद स्वानुभूत होकर अधिक सघन हो गई है। 'ग्रंथि' एक प्रवंचित प्रेमी के क्षुब्ध हृदय की आर्त्तपुकार है—

कौन दोषी है ? यही तो न्याय है !
वह मधुप बिंध कर तड़पता है, इधर
दग्ध चातक तरसता है,—विश्व का
नियम है यह, रो, अभागे हृदय ! रो !!

—ग्रंथि, पृ० ८७

'उच्छ्वास' में एक मनोरम बालिका मित्र की चर्चा की गई है। पर 'पल्लव'-काल में भी संयोग इच्छित रूप में उपलब्ध नहीं हो सका—'किए भी हुआ कहाँ संयोग' ? यहाँ भी प्रणय करुण ही रहा और वह इसलिए कि इच्छित संयोग तो हुआ ही नहीं, प्रेम का दुराव भी कठिन हो गया। खुल पड़ने के भय ने प्रेम को करुणतर बना दिया।

करुण है हाय ! प्रणय,
नहीं दुरता है जहाँ दुराव,
करुणतर है वह भय,
चाहता है जो सदा बचाव,

—आँसू, पल्लव, पृ० १६

अतः 'आँसू' भी कवि के प्रेम का 'गीला-गान' है, जिसका—

वर्ण वर्ण है उर की कम्पन,
शब्द शब्द है सुधि की दंशन,
चरण चरण है आह,

—आँसू, पल्लव, पृ० ११

हाँ, 'आँसू' में पंत जी ने खुलकर अपने को गंगाजल की तरह पवित्र कहा है। कवि को दुःख है कि संसार उसके हृदय के प्रेम की पुनीतता को क्यों नहीं देखता ? दुनियावाले उसके प्रेम को पाप क्यों बता रहे हैं—गंगाजल को मदिरा की संज्ञा क्यों दी जा रही है ? संसार के इस जड़ स्वेच्छा-

चार के प्रति कवि के मन में बड़ा क्षोभ उमड़ता है--

कभी तो अब तक पावन-प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार,
हुई मुझको ही मदिरा आज
हाय, क्या गङ्गाजल की धार !!

हृदय ! रो, अपने दुख का भार !
हृदय ! रो, उनको है अधिकार !
हृदय ! रो, यह जड़-स्वेच्छाचार,
शिशिर का-सा समीर-सञ्चार !!

---आंसू, पल्लव, पृ० १७

कवि पलकें मूँदकर प्रिय-ध्यान का रसपान करने की चेष्टा तो करता है पर इस क्रिया में भी उसकी आँखों से दृग-जल-धार बह निकलती है--

मूँद दुहरे दृग द्वार !
अचल-पलकों में मूर्ति सँवार
पान करता हूँ रूप अपार,
पिघल पड़ते हैं प्राण,
उबल चलती है दृग-जल-धार !

---आंसू, पल्लव, पृ० १९

गुंजन की प्रणय-भावना के आधार-तत्त्व

'गुंजन' में पूर्व रचनाओं का न आवेग है, न आसक्ता, न अविश्वास है, न निराशा, न शिकवा-शिकायत है, न रोना-धोना। 'गुंजन' के प्रणय-गीत आशा के आलोक से दीप्त और विश्वास के पराग से सुवासित प्रणय के संयोग-गीत हैं। इसका कारण यह है कि गुंजन में कवि शरीर से मन की ओर, दृष्टि से अनुभूति की ओर तथा सुन्दर से शिव की ओर आया है और उसकी प्रकृति सुख-दुःख में समत्व स्थापितकर अन्त-र्मुखी बनने लगी है। इसलिए यहाँ पहुँचकर कायिक वियोग-वेदना मान-

सिक सयोग के उत्लास-विलास में परिवर्तित हो गई है। कवि की सौदर्य-भावना दृष्टि की सीमा का अतिक्रमणकर अनभूति लोक में प्रणय का नया अभियान साज चली है। प्रकृति ही नही, अब नारी भी स्वप्न का छाया-चित्र बनकर आ रही है।

अरुण-अधरो की पल्लव-प्रात,
मोतियो-सा हिलता-हिम-हास।
इन्द्रधनुषी-पट से ढग गात
बाल-विद्युत का पावस-लास,

—पृ० ४१

ऐसी मनोदशा में वियोग कहाँ? यहाँ तो चिर सयोग है। कवि की प्रेयसी सदा-बहार बनकर उसक सामने उपस्थित है—

प्रिये, कलि-कुसुम-कुसुम में आज
मधुरिमा मधु, सुखमा सुविकास,
तुम्हारी रोम-रोम छबि-व्याज
छा गया मधुवन में मधुमास।

—पृ० ५८

आज तो प्रेयसी की मुस्कयान से कवि के आँगन का कोना-कोना मुस्कुरा रहा है—

मुस्कुरा दी थी क्या तुम, प्राण!
मुसकुरा दी थी आज विहान?
आज गृह-वन-उपवन के पास
लोटता राशि-राशि हिम-हास,
खिल उठी आगन में अवदात
कुन्द कलियो की कोमल-प्रात।

—पृ० ४६

प्रेम और रसशास्त्र

रसशास्त्र की दृष्टि से 'गुंजन' के प्रणय-गीतों का रस शृंगार है। कवि के हृदय का रति-भाव (प्रेम) इसका स्थायी भाव१ है, नारी-सौंदर्य आलम्बन२ तथा प्रकृति-सौंदर्य उद्दीपन विभाव३ है, कवि और उसकी प्रेयसी के पुलक, कंपन आदि अनुभाव ४ हैं और प्रेयसी की स्मृति एवं रूप-अनुमान आदि संचारी ५ भाव हैं।

---

१ नवल मेरे जीवन की डाल
बन गई प्रेम-विहग का वास !
—पृ० ५०

२. प्रिय प्राणों की प्राण !
न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम स्वर्गीय-विधान !
नवल-कलिकाओं की-सी वाण,
बाल-रति-सी अनुपम—असमान—
न जाने, कौन, कहाँ, अनजान,
प्रिय, प्राणों की प्राण !
—पृ० ३९

३. अरे अब जल-जल नवल प्रवाल
लगाते रोम-रोम में ज्वाल,
आज बौरे रे तरुण-रसाल
भौंर-मन मँडरा गई सुवास
—पृ० ५१

४. (क) अरे वह प्रथम-मिलन अज्ञात !
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित-गात,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित-पद, नमित-पलक-दृग-पात,
—पृ० ४३

चूंकि 'गुंजन' का प्रेम बहुलांश में भावात्मक है, इसलिए यहाँ अनुभावों का उतना विशद वर्णन नहीं है जितना आलंबन, उद्दीपन और संचारियों का। उद्दीपन की चर्चा प्रकृति-चित्रण के प्रसंग में हो चुकी है।

गुंजन की नारी भावना

आलम्बन के रूप में कवि ने जिस नारी की मनुहार की है वह तरुणाई और यौवन की संधिभूमि में खड़ी एक तन्वी है। यहां रवि ठाकुर की ढलती उम्र की नारी की 'नारीर उक्ति' नहीं है और न उनकी कुरूपा की रूप-साधना ही है। यहाँ तो 'अधखिले अंगों का मधुमास' खिल रहा है। कवि की 'भावी-पत्नी' का मुख 'अधोमुख अरुण सरोज समान' है। यौवन उसके शैशव में प्रवेश करने का उपक्रम कर रहा है—

तुम्हारे शैशव में सोभार,
पा रहा होगा यौवन प्राण,
—पृ० ८३

'उच्छवास' की 'बालिका मित्र' अब 'किशोरी' बन गई है—

झूलती उर में आज, किशोरि!
तुम्हारी मधुर-मूर्ति छबिमान
—पृ० ४३

(ख) आज चंचल-चंचल मन-प्राण,
आज रे शिथिल शिथिल तन भार,
—पृ० ५२

५ (क) दृगों में छा जाता सोल्लास
व्योम-बाला का शरदाकाश,
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान,
—पृ० ८१

५ (ख) हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले अंगों का मधुमास,
तुम्हारी छबि का कर अनुमान
—पृ० ४२

उसके अंग-अंग पर नूर बरसता है—'तुम्हारी रोम-रोम छबि-व्याज, छा गया मधुवन में मधुमास'। वह रति-बाला-सी सुन्दर और अनाघ्रात कली-सी पुनीत है—'नवल कलिकाओं की-सी वाण, बाल-रति-सी अनुपम, असमान'। पर यह किशोरी यौवन की चेष्टाओं और काम की व्यापकता से परिचित है। उसकी आंखों में भंगिमा है और नयनों में पंचशर-वाण, किन्तु उसकी वाणी में लाज का अवगुंठन है और उसके प्रणय में मान की मर्यादा—

देह में पुलक, उरों में भार,
भ्रूवों में भंग, दृगों में बाण,
अधर में अमृत, हृदय में प्यार,
गिरा में लाज, प्रणय में मान।

—पृ० ६०

'पंत' की नारी का यह रूप मादक अवश्य है किन्तु अशिष्ट नहीं। उसकी चेष्टाओं को मान के द्वारा आवृतकर कवि ने मादकता को उचित मान दे दिया है।

पंत की नारी-भावना में कीट्स की-सी मादकता है किन्तु बायरन का 'रूप-विलास', लोरेंस की 'लैंगिकता' अथवा रीतिकालीन कवियों की स्थूलोपासना उतनी नहीं है।

कल्पना ने पंत की नारी की काया रची है, अनुभूति ने उसे प्राण दिये हैं, यथार्थ ने स्वाभाविकता के रस से उसे अभिसिञ्चित किया है और अध्यात्म ने उसे आचारपूत बनाना चाहा है।

नारी को आदर्श दिव्यता देने के लिए कवि ने एक ओर प्राकृतिक उपादानों से उसका शृंगार किया है—

मुग्ध स्वर्ण-किरणों ने प्रात
प्रथम खिलाए वे जलजात,
नील व्योम ने ढल अज्ञात
उन्हें नीलिमा दी नवजात

जीवन की सरसी उस प्रात
लहरा उठी चूम मधु-वात,
आकुल-लहरो ने तत्काल
उनमें चचलता दी ढाल
नील नीलम-सी है वे आख !

—पृ० ८७

कवि की कल्पना ने एक ओर निसर्ग की विभूतियो से आभूषितकर उसे एक व्यापक सौदर्य के रूप में देखा है,—

नवल मधु ऋतु-निकुज मे प्रात
प्रथम कलिका-सी अस्फुट गात,
नील नभ अत पुर में, तन्वि !
दूज की कला सदृश नव जात,
मधुरता, मृदुता-सी तुम प्राण !

मुकुल-मधुपो का मृदु मधुमास,
स्वर्ण सुख, श्री, सौरभ का सार,
मनोभावो का मधुर-विलास
विश्व-सुखमा ही का ससार

—पृ० ८०-४१

तथा दूसरी ओर उसे दृष्टि से अनुभूति के लोक में खीच ले गयी है। वहाँ पहुँचकर कवि की मृगेक्षिणी एक सौदर्य-कल्पना, एक प्रेमानुभूति मात्र रह जाती है—

कल्पना तुम में एकाकार,
कल्पना में तुम आठो याम,
तुम्हारी छबि में प्रेम-अपार,
प्रेम में छबि अभिराम,

—पृ० ६५

शेली की तरह पंत ने भी नारी को सौंदर्य-चेतना (Spirit of beauty) के रूप में देखा है—

निखिल-कल्पनामयी अयि अप्सरि !
अखिल विस्मयाकार !
अकथ, अलौकिक, अमर, अगोचर
भावों की आधार !

—पृ० ९२

प्रेयसी के सौंदर्य से अखिल सस्कृति को अभिभूतकर कवि ने प्रेयसी की व्यापकता द्वारा प्रेम की लौकिक भावना को आध्यात्मिक अलौकिकता प्रदान करना चाहा है—

कब से विलोकती तुम को,
ऊषा आ वातायन से ?
सध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आगन से !

—पृ० ४५

अब तो वह तारिका-सी दिव्य और 'चारु चित्रा-सी आभासीन' है । 'आत्म निर्मलता में तल्लीन' यह प्रणय हंसिनी तो स्वर्ग की अभिसारिका है जो 'स्नेह की सृष्टि नवीन' लेकर उतरी है—

तारिका-सी तुम दिव्याकार,
चन्द्रिका की झंकार !
स्वर्ग से उतरीं क्या सोद्गार
प्रणय-हंसिनि सुकुमार ?
हृदय सर में करने अभिसार ,
जल-रति, स्वर्ण-विहार !

—पृ० ६८

इस तरह कवि ने नारी के साथ धरती से स्वर्ग तक की यात्रा की है और उसे ऐहिक जगत के साथ ही एक आदर्श धाम और आध्यात्मिक लोक में प्रतिष्ठित करके देखने की चेष्टा की है ।

पंत जी ने नारी को, देवी, मा, सहचरी और प्राण कहा है। गुंजन' में नारी मुख्यत 'सहचरी' और 'प्राण' है। सहचरी के रूप में कवि ने नारी के सौंदर्य और प्रेम के व्यावहारिक पक्ष की अभिव्यक्ति की है। 'नवल मेरे जीवन की डाल' या 'आज रहने दो यह गृह काज' शीर्षक कविताओं तथा 'भावी पत्नी' या 'मधुवन'(३) के अभिसार—आलिंगन-चित्रों में इसी पक्ष की अभिव्यंजना हुई है। 'प्राण' के रूप में कवि ने नारी-सौंदर्य के कल्पना-प्रधान आदर्श रूप को अपनाया है। इस रूप में वह अस्थि-मास की नारी मात्र नहीं है, वह एक सौंदर्य-भावना है जो मनुष्यमात्र के आनन्द का आधार है—'सुर-नर-मुनि ईप्सित' है और जो सर्वयुगीन-सार्वभौमिक है—'प्रतियुग में आती हो रंगिणि! रच-रच रूप नवीन'। इस रूप में नारी देवी भी बन जाती है। 'अप्सरा', 'प्राण! तुम लघु-लघु गात!', 'रूपतारा तुम पूर्ण प्रकाम','कबसे विलोकती तुमको' आदि रचनाओं में नारी का चित्रण इसी रूप में किया गया है।

नारी सम्बन्धी कवि-प्रसिद्धिया

'मधुवन' में पंत जी ने नारी सम्बन्धी कवि-प्रसिद्धियों का[1] भी (कि स्त्रियों के पदाघात से अशोक, स्पर्श से प्रियंगु, कुल्ला करने से बकुल, देखने से तिलक, आलिंगन करने से मेंहदी, मृदुल भाषण से मन्दार, हँसी से चंपा, मुँह की हवा से आम, गीत से नमेरु, नृत्य से कारोजिर फूल खिलते हैं।) विशद वर्णन किया है—

खिल उठी चल-दसनावलि आज
कुंद-कलियों में कोमल-आभ,
एक चंचल-चितवन के व्याज
तिलक को चारु छत्र-सुख लाभ।

---

१ पादाघातादशोक विकसति बकुल योषितामास्यमद्यै
यूनामङ्गेषुहारा स्फुटति च हृदय विप्रयोस्यतापै
मौर्वी रोलम्ब माला धनुरथविशिखा कौसुभा पुष्पकेतो
भिन्न स्यादस्य बाणैर्युवजन हृदय स्त्रीकटाक्षेण तद्वत् ॥
—साहित्य दर्पण

तुम्हारे चल-पद चूम निहाल
मजरित अरुण अशोक सकाल,
स्पर्श से रोप-रोम तत्काल
सतत-सिंचित प्रियगु की बाल ।

स्वर्ण-कलियो की रुचि सुकुमार
चुरा चम्पक तुम से मृदु-वास,
तुम्हारी शुचि स्मति से साभार,
भ्रमर को आने दे क्यो पास ?

देख चचल मृदु-पटु पद-चार
लुटाता स्वर्ण-राशि कनियार,
हृदय फूलो में लिए उदार
नर्म-ममज्ञ मुग्ध मन्दार ।

तुम्हारी पी मुख-वास तरग
आज बौरे-भौंरे, सहकार,
चुनाती नित लवग निज अग
तन्वि ! तुम-सी बनने सुकुमार

—पृ० ५६-५७

प्रेम-भावना कामशास्त्र

पतजी ने स्वय कहा है कि हमने किशोर प्रेम का वर्णन किया है । मनोविज्ञान के आचार्य कहते है कि व्यक्ति में प्रथम-प्रथम स्वाजातीय प्रेम का उदय होता है । 'लाई हूँ फूलो का हास,लोगी मोल लोगी मोल' में उस प्रेम की साकेतिक झाँकी भी मिल सकती है । कही २ तो रज, तारा, मृग आदि कामशास्त्र के पारिभाषिक शब्दो का भी प्रयोग किया गया है । पर डा० रामविलास शर्मा के इस कथन को कि पत जी सदा अपनी बगल में कोकशास्त्र दबाए रहते है, परिमार्जन के साथही स्वीकार करना पडेगा ।

प्रणय गीतो की सफलता

'गुजन' के सयोग-पक्ष के इन प्रणय-गीतो की निमिति में पत जी को पर्याप्त सफलता मिली है। हिन्दी के शृगारी कवियो पर अस्वाभाविकता का लाछन लगाया गया है । बात यह है कि जब ये विरह-वणन करन लगते हैं तब कल्पना के कँगूरे पर चढकर 'कल्पना का इन्द्र जाल' बुनन लगते है ओर जब सयाग-शृगार के प्रसग की अवतारणा करत है तब कल्पना ओर अनुभूति को झटककर अत्यत स्थूल और निम्न चित्र उपस्थित कर देते है । इस विशृखलता का अभाव पत जी को रीति-कालीन शृगारी कवियो से अलग एक उच्चतर भाव जगत में प्रतिष्ठित करता ह । उवर कल्पना और मामिक अनुभूति उनकी प्रम-वणना के अपरिहाय उपकरण है । इनक समन्वय स जहाँ 'परिवर्तन' [1] आदि कविताओं में वियोग का सुन्दर विकास हुआ है वहाँ 'मधुवन' आदि रचनाओ में सयाग के व्यापक रूप की सुन्दर सृष्टि हुई है [2]—

आज उन्मद मधु-प्रात
गगन के इन्दीवर से नील
झर रही स्वर्ण-मरन्द समान,
तुम्हारे शयन-शिथिल सरसिज उन्मीत
छलता ज्यो मदिरालस, प्राण !

—पृ० ५४

---

१ (क) अखिल यौवन के रग-उभार
हड्डियो के हिलते ककाल,
कचो के चिकने, काले व्याल
केंचुली, काँस, सिवार,
गूजते है सबके दिन-चार,
सभी फिर हाहाकार !

(ख) प्रात ही तो कहलाइ मात,
पयोधर बने उरोज उदार,
मधुर उर-इच्छा को अज्ञात
प्रथम ही मिला मृदुल-आकार,
छिन गया हाय ! गोद का बाल
गडी है बिना बाल की नाल !

२ नन्ददुलारे वाजपेयी

कवि वासना-प्रेरित प्रेमाकर्षण की विवशता से परिचित है जो विवेक के बंधन को नहीं मानता—

आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग
मानता नहीं बंधन विवेक !

—पृ० ८५

यौवन के उन्मद वसन्त में नारी का रूप कवि को उसी भाँति आकर्षित करता है जिस भाँति मधुकर को मादक मधु-गंध—

प्रथम-यौवन मेरा मधु मास,
मुग्ध-उर मधुकर, तुम मधु, प्राण !

—पृ० ६५

वह पुरुष-नारी के प्रथम-मिलन की सिहरणभरी कल्पना से कंटकित हो उठता है—

अरे वह प्रथम-मिलन, अज्ञात !
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित-गात,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जडित-पद, नमित-पलक-दृग-पात,
पास जब आ न सकोगी प्राण !

—पृ० ४३

इस प्रथम मिलन की कल्पना कितनी कोमल और इसकी अनुभूति कितनी मार्मिक है। सुहाग रात में दो अपरिचित हृदयों का मिलन है। दोनों में धड़कन है पर दोनों की चेष्टाओं में भोलापन है। पुरुष स्वभाव से आग्रही है, नारी स्वभाव से लजवन्ती। पुरुष आवेगों से भर रहा है, नारी सिहर-सहम रही है और सम्पूर्ण अभिसार-प्रदेश उनकी सांसों की गंध से मादक हो उठा है।. 'उर्वर कल्पना और सच्ची अनुभूति' पंत जी के प्रणय-गीतों की विभूति है।

कवि की प्रेयसी आँगन में सहचरी बनकर उतरती है और गृहिणी बनकर गृह-काज करती है। किन्तु युवक को गृहिणी का नियंत्रित सांसारिक प्रेम-दान संतुष्ट नहीं करता। आज तो उसके यौवन के प्रथम मधुमास में

लालस सालस वाताम' वह रही है। उसकी अभिलाषाओ में शत-शत किसलय निकल आए है। उसकी अमराई मे 'तरुण रसाल' मजरित हो गये है। उसके मधुवन में पहली बार प्राण-पिक कूक उठ है। गृह-काज तो रोज-रोज होता रहेगा। वह अपनी मुग्धा से गृह-काज छोड, यौवन के इस मादक प्रहर मे लाज छोडकर अभिलाषाओ मे एकाकार हो लेन का आग्रह करता है—

आज चचल-चचल मन-प्राण,
आज रे शिथिल-शिथिल तन भार,
आज दो प्राणो का दिन-मान,
आज ससार नहीं ससार!
आज क्या तुझे सुहाती लाज?
आज रहने दो यह गृह काज!

—पृ० ५२

पर यह आग्रह भी शायद अशिष्ट नही है क्योकि इसमें पातिव्रत को ताक पर रखने की बात नही है। यह तो एक दम्पति का मधुरालाप है। इस गीत में 'प्रेम की मधुर विवशता' से बने सम्पूर्ण वातावरण में वास्तविकता की स्निग्धता है।

हा, एकाध जगह उसकी एकाकारिता सघन है—

मिलें अधरो से अधर समान,
नयन से नयन, गात से गात,
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण,
भुजो से भुज, कटि से कटि शात।

—पृ० ६१

यह एकाकार-भावना अनपेक्षित रूप से शृगारिक और स्थूल अवश्य है पर यह एक क्षण के लिए ही हमारे सामने उपस्थित होती है। दूसरे ही क्षण कवि इसे समान धरातल से उठाकर चिरतन भावलोक में खीच लाता है—

आज तन-तन मन-मन हो लीन,
प्राण ! सुख-सुख, स्मृति-स्मृति चिरसात्,
एक क्षण, अखिल दिशाविधि-हीन,
एक रस, नाम-रूप-अज्ञात ।

—पृ० ६१

अत पत जी, नारी म वासना का जो सयोग है उससे परिचित है किन्तु उनमें वासनावाद नही है । पत जी मे वासना है पर एकाध स्थलो को छोडकर उस वासना में अशिष्टता या अश्लील शृगारिकता की दुर्गंध नही है, 'वास्तविकता की सुरभि' है । कवि ने वासना को एक उचित स्थान पर छोड दिया है ओर उसकी कल्पना ने प्रेम तथा प्रेम के आधार नारी को क्रमश सयमित और अनुभूतिप्रिय बना दिया है । पत जी फ्रायड या शॉ की भाति प्रेम को सक्स का एक स्वच्छदवादी रूप मात्र नही मानते । प्रम उनके लिए आत्मा की एक अनुभूति भी है । पत जी के नाटक 'ज्योत्स्ना' में एक नारी पात्र ने कहा है कि 'मे चाहती हूँ कि प्रेम की भाषा अधिक सस्कृत, प्रेम प्रगट करने के हावभाव और भी नवीन एव परिमार्जित हो ।' 'गुजन' में प्रेम की इस सस्कृत भाषा का प्राय प्रयोग हुआ है । 'पल्लव' के आवेग को 'गुजन' के विवेक ने सयम देकर एक नवीन प्रेमाख्यान गढा है ।

'गुञ्जन' मे छायावाद

छायावाद की विशिष्टताए

छायावाद विश्व के प्रत्येक पदार्थ में एक अज्ञात, सचेतन-सप्राण सौदय सत्ता की अनुभूति है। छायावाद न तो केवल 'प्रतीकवाद' है, न 'चित्रभाषावाद' और न एक 'अभिव्यजन पद्धति' मात्र पर अवश्य वह इन सब का एक समन्वयात्मक नाम है। उसकी काया ध्वन्यात्मक प्रतीक शैली, चित्रमयी भाषा, लाक्षणिक अलकार, सौदयमय सगीत और उदार छद जैसे काव्य के 'पचतत्त्व' की बनी है। व्यापक, सप्राण सौदर्यानुभूति, प्रेमोपासना, आत्माभिव्यजन, विरह-निवेदन और सश्लिष्ट जीवन-दर्शन उसकी अन्तर्मुखी आत्मा की विशेषताएँ ह।

छायावाद और रहस्यवाद

छायावाद पदार्थ में चेतन सौदय-सत्ता का दर्शन है और रहस्यवाद घट में ब्रह्म का। छायावाद में आत्मा आत्मा की अनुभूति करती है और रहस्यवाद मे विश्वात्मा की। छायावाद सवचेतनवादी काव्य है, रहस्यवाद ब्रह्म-वादी। छायावाद ससार के प्रत्येक पदार्थ मे (तथाकथित जड पदार्थों में भी) आत्मा को देखता ह और उसके प्रति सवेंदनशील होता है, रहस्यवाद विश्व-व्याप्त ब्रह्म के महास्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करता है। महादेवी वर्मा के शब्दो में 'छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपो में प्रगट एक महाप्राण बन गई, अत अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओ का एक ही कारण, एक ही मूल्य है', और 'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शात और निश्छल सम्बन्ध जोडना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ जाता है कि दोनो में कोई भी अन्तर नही रह जाता'। इस प्रकार छायावाद रहस्यवाद का एक सोपान मात्र है। वह वस्तुवाद और रहस्यवाद का

मध्यवर्ती है। वस्तुवाद में किसी पदार्थ का यथातथ्य चित्रण होता है, छायावाद उस पदार्थ के वाह्यावरण को भेदकर उसके भीतर एक आत्मा ढूंढ लेता है और रहस्यवाद उस आत्मा में ब्रह्म का विस्तार पा लेता है।

इतिहास की दृष्टि से

इस अवतरण का अर्थ यह है कि छायावाद रहस्यवाद का स्वाभाविक सोपान बन सकता है और उसमें रहस्यवाद की आध्यात्मिकता की किञ्चित मात्रा भी है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि हिन्दी के नवीन छायावाद का मूल उद्देश्य रहस्यवाद के शृंग पर चढ़ना था। विषय की दृष्टि से छायावाद प्रकृति और प्रेम-काव्य है। उसका आध्यात्मिक पक्ष दुर्बल है। वस्तुतः वह पश्चिम से आनेवाली रोमांटिक काव्य-धारा का भारतीय स्वरूप है। छायावाद घोर आचारवादी, सुधार और नैतिकता से शंकित द्विवेदी काल की शुष्कता और रूक्षता के प्रति हृदय की रसिकता की प्रतिक्रिया था।[1] द्विवेदी काल के आदर्शवाद ने रतिशास्त्र को अग्निसात किया था और प्रेम तथा शृंगार को वर्जित प्रदेश मान लिया था। छायावाद की चिता के केन्द्र में नारी बैठी है। पंत जी की समस्तकला नारी कला है। पंत जी ने 'कोमल मनुज कलेवर' की कल्पना की है और 'अविराम प्रेम की बाँहों में, मैं मुक्ति पायी। उन्होंने प्रकृति को नारी के रूप में देखा है और निसर्ग से तादात्म्य अनुभव करते समय स्वयं अपने को भी नारी मान लिया है। उन्होंने पुल्लिंग शब्दों का स्त्रीलिंग प्रयोग किया है। नारी पंत जी के 'प्राणों की प्राण' है। जब वह मुसकुराती है, तब प्रभात विहँस पड़ता है।[2] नारी वह सौंदर्य-चेतना है जो संसार के उल्लास का कारण है और जिसके

छायावाद का रोमान्टिक स्वरूप

---

१ विस्तृत विवेचन के लिए देखिए 'छायावाद की रास' पृ० ९-१७

२. मुस्कुरा दी थी क्या तुम प्राण !
   मुसकुरा दी थी आज विहान ?
   —पृ० ४६

अभाव में मनुष्य क्या देवता का जीवन भी जड हो जाय। सूरज उसे ही देखने के हेतु प्राची के वातायन से हर भोर को झाँकता है। साँझ उसे न पा उदास लौट जाती है। वह आयेगी, इसी आशा में आकाश के सितारे, आशा का दीप जलाये, निर्निमेष दृष्टि से उसका पथ हेरते रहते हैं।

कब से विलोकती तुम को
ऊषा आ वातायन से ?
सन्ध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आगन से !

तुम आओगी-आशा में
अपलक हैं निशि के उडगण !
आओगी, अभिलाषा से
चचल, चिर-नव, जीवन-क्षण !

—पृ० ४५

रवीन्द्र नाथ के हृदय में एक विरहिणी बैठी थी, पर हिन्दी के छाया-वादी कवियो के मन में 'मदिर नयना'। रवीन्द्र देश और काल से ऊपर उठकर क्षणिक को अपनी करुणा के स्पर्श से शाश्वत कर चुके थे। काल और व्यक्ति की सीमाओ के बीच छायावादी कवियो ने यौवन के क्षणिक प्रकाश को ही अमर मान लिया था। प्रसाद ने उसके यौवन-विलास को, पत ने वय सधि के धूपछाँही रग को, निराला ने उसकी रति-क्रीडा और शक्ति को तथा महादेवी ने उसकी अतृप्त वेदना को वाणी दी है। इस नारी के लिए तत्कालीन काव्य को स्वय अपना रूप सँवारना पडा था। आचारवाद से आक्रात द्विवेदी-कालीन साहित्य में शिव की प्रतिष्ठा हुई थी और सुन्दर का तिरोभाव। छायावाद ने सुन्दर का आवाहन किया था। छायावाद सौदर्यवाद के पुनर्निर्माण (Aesthetic Revival) को लेकर उपस्थित हुआ था। छायावादी कवियो में सौदर्य-की बुभुक्षा-

छायावाद की सौदर्यानु-भूति

सी थी। असुन्दर के लिए उनके काव्य में स्थान न था। पर यह सौदर्य रीति-कालीन दरबारी सस्कृति में पले सौदय से भिन्न था। छायावाद ने रीतिकाल की पुनरावृत्ति नही, उसकी सौदय-भावना का पुनर्मूल्याकन किया था। रीतिकाल का सौदर्य सकीर्ण था, छायावाद का व्यापक। रीतिकाल में चन्द्र, पनघट, कमल, कदली आदि की रूढियाँ सौदय की सीमा बनाकर खडी थी। छायावाद ने प्रकृति में सौदर्य-विस्तार के अनेक लीला-क्षेत्र निर्मित किये थे। रीतिकाल की नारी जड ओर निर्जीव थी, छायावाद की नारी जीवित और सप्राण। रीतिकाल की नारी के पास शरीर मात्र था, छायायुग की नारी के पास प्राण भी। रीतिकालीन नारी का मापदड रीतिशास्त्र था, छायायुग की नारी का मनोविज्ञान और काम-शास्त्र। अत रीतिकाल की नायिका एक देशीय थी, छायायुग की प्रेयसी सार्वदेशिक।

पत जी में छायावाद क इस 'सुन्दर'-तत्त्व का अच्छा विकास हुआ है। उनके प्राण सौदयवादी है। उनकी कविता में सर्वत्र सौदय की आत्मा का दर्शन होता है। छन्द, शब्द, ध्वनि, अलकार सब में सौदर्यान्विषण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। वैसे उन्होंने सम्पूर्ण मानव-जीवन को ही एक सौदर्यान्वेषी की दृष्टि से देखा है--

सुन्दर मृदु-मृदु रज का तन,
चिर सुन्दर सुख-दुख का मन,
सुन्दर शैशव यौवन रे
सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन।

--पृ० २९

उनके लिए प्रकृति ओर नारी एक अखडनीय लावण्य-तत्त्व के उभय पक्ष है। इस प्रकार उन्होंने सौदर्य के विस्तार को एक व्यापक दृष्टिकोण से देखा है।

द्विवेदी काल में दृश्य जगत् काव्य का क्षेत्र था। प्रेम के रोमाटिक रूप को लेकर चलनेवाले सुकुमार सूक्तियो के के कोमल-प्राण छायावादी कवियो के लिए द्विवेदी युग

अपार्थिव लोक की कल्पना

की कर्म-कठोर, आचार-तप्त काव्य-भूमि अनुकूल न थी, अतः उन्होंने प्रेमाभिव्यक्ति की परोक्ष शैली अपनायी और अपने भाव-विलास के लिए दृश्य सीमा के उस पार एक कल्पना-लोक का निर्माण किया जहाँ श्रम का प्रकाश नहीं, स्वप्न की चाँदनी छायी रहती है। कूर्माचल प्रदेश के कवि पंत ने क्षितिज से मिली हुई वृक्षावलि की हरिताभ रेखा के उस पार उस 'छाया-वन'—उस सुकुमार सुषमा-लोक को देखा है, जहाँ स्वर्ग की परियाँ अभिसार रचती हैं—

दूर उन खेतों के उस पार,
जहाँ तक गई नील-झंकार,
छिपा छाया-वन में सुकुमार,
स्वर्ग की परियों का संसार।

—पृ० ७४

पलायन-प्रवृत्ति और गुंजन

कल्पना का यह आयाम पलायनवाद के नाम से अभिहित हो चुका है। चूँकि 'गुञ्जन' में पंत जी सुन्दर से शिव की ओर आए हैं, कल्पना-व्योम से जीवन की डाल पर उतरे हैं और भारतीय दर्शन के अनुशीलन ने उन्हें जीवन और जगत् के प्रति एक नवीन हर्षपूर्ण दृष्टिकोण दिया है, इस में पलायन की मात्रा पूर्व की अपेक्षा न्यून है। जहाँ 'प्रसाद' जी 'नाविक' से अपने आकुल मन को भुलावा देकर कोलाहलपूर्ण अवनि से दूर उस लोक में ले चलने का आग्रह करते हैं जहाँ 'प्रेम-कथा' निर्बाध रूप से चलती हो और महादेवी 'उस पार' जाने को व्यग्र हैं—'कौन पहुँचा देगा उस पार' वहाँ पंत जी 'गुञ्जन' में इस पार से ही उस लोक से आती हुई छवि-लहरियों का दर्शन करना चाहते हैं—

आएगी मेरे पुलिनों पर
वह मोती की मछली सुन्दर,
मैं लहरों के तट पर बैठा
देखूँगा उसकी छबि जी भर।

—पृ० ७१

'गुजन' का कवि वर्ड्सवर्थ के लावा पक्षीकी भाति व्योम-विहार भी करना चाहता है और धरती पर सतरण भी। कवि का कल्पना-विहग नीलाम्बर में उनमुक्त उडान भरने को पर मारता हे किन्तु जीवन की कठोरता उसके पखो को जैसे बाध लेती है——

निज इन्द्र धनुष-पखो में
जो उडते ये तितली-से,
मैं भी फूलो के बन में
क्या इनके सग उड जाऊँ ?

——ना पीले-तारो से ही
मेरी कितनी ही बातें
कुम्हला चुपचाप गई हैं,
मैं कैसे उसे भुलाऊँ !

——पृ० ६७-६८

प्रकृति-भावना

छायावादी कवि उपर्युक्त सौदर्य-लोक में युग का 'हरनेत्र' बना अध्यात्म और प्रकृति की ओट लेकर गए थे। रीतिकाल ने सौदर्य-चित्रण के लिए देव पुरुषो का आलम्बन ग्रहण किया था, छायायुग ने प्रकृति और अव्यक्त सत्ता का। छायावादी कवि कि प्रकृति 'रतिभाव भरित थी। उन्होंने प्रकृति का प्रयोग प्रतीक के रूप में तो किया पर प्राय अली, कली, लता, विटप, बादल, विद्युत आदि के प्रतीको की ओट में प्रेम के हाव-भाव ही चित्रित होते रहे। निराला की 'जूही की कली' और 'शेफालिका' में धरती का प्रेम-व्यापार चित्रित है। पत जी के लिए प्रकृति की एक-एक वस्तु 'प्रेम की चुहल' करती जान पडती है। उनके मधुबन में 'लोहित प्रात' उतरता है, 'उन्मद वात' डोलती है, 'मृदुल मुकुलो का मौनालाप' होता है और गगन के नील इन्दीवर से स्वर्णमरन्द झरता है।

तरुण विटपो से लिपट सुजात,
सिहरती लतिका मुकुलित-गात,

सिहरती रह-रह सुख से, प्राण !
लोम-लतिका बन कोमल-गात ।

—पृ० ६०

—आदि[1] पंक्तियो में प्रकृति का गाढा योनीय चित्रण है। कवि का मन योन-परिकल्पनाओ से लदा है, जो उसकी सौंदय-चतना को आक्रान्त कर रही है। इस प्रकार वहुलाश में छायावाद की प्रकृति नारी की प्रतिकृति बन गई है। इससे एक बात हो गई ओर वह यह कि अब प्रकृति पूर्व की भाँति जड नही, हृदय के स्पदन ओर धडकन मे युक्त होकर एक सप्राण चेतन सत्ता बन गई। तब कवि के नयन प्रकृति-सुन्दरी के शारीरिक छवि-वैभव और बाह्य रूपालकारा के निहारने मे लग्न थे, अब कवि का मन उसके हृदय में छिपे मधु-कलश पर टिका था। अब प्रकृति दूती मात्र नही, स्वय अभिसारिका भी थी। छायायुग में मानवीकृत चेतन प्रकृति के जितने नयनाभिराम चित्र 'चित्रित घाटी' के गायक पत ने उपस्थित किए थे, उतने शायद अन्य किसी ने नही। 'चाँदनी' इसका एक उत्कृप्ट उदाहरण है। चादनी नीले आसमान के शतदल पर एक विशेप मुद्रा में मूक और एकाकिनी बनकर बैठी है, किरण-करो पर उसका चद्रमुख है।

मानवीकृत चेतन प्रकृति

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनी,
मृदु-करतल पर शशि-मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि ,

—पृ० ८७

---

१ दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छबि की छुईमुई-सी
मृदु मधुर लाज से मर-मर।

—पृ० ८९

मदिर-शिथिल क्षण की चित्रवत् मुद्रा !

ऊँघते-ऊँघते वह सो गई। उसकी 'स्वप्न-जडित नत-चितवन' से तो ऐसा ही जान पडता है। हाँ, वह नदी के कछार पर निश्चेष्ट होकर सो रही है। मद मलयानिल उसकी साँस है, लहरें उसकी छाती की धडकन !

वह सोई सरित-पुलिन पर
सांसो में स्तब्ध समीरण,
केवल लघु-लघु लहरो पर
मिलता मृदु-मृदु उर-स्पन्दन ।

—पृ० ८८

और देखते-ही-देखते उसकी नींद उचट गई। अरे, वह तो जैसे उड चली। कभी वह लहरो पर नाचती है और कभी गिरिशिखर पर जा खडी होती है।

अपनी छाया में छिपकर
वह खडी शिखर पर सुन्दर,
है नाच रही शत-शत छवि
सागर की लहर-लहर पर ।

—पृ० ८८

चाँदनी कितनी चचल ! तथा कथित जड प्रकृति कितनी प्राणवती !

आध्यात्मिकता का आरोप

निवेदन किया जा चुका है कि छायावाद का सौदर्य प्राकृतिक व्यापारो और आध्यात्मिक सकेतो के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ था। अत छायावाद में प्रकृति के रतिभावभरित प्रतीको के अति-रिक्त कल्पना-प्रधान आध्यात्मिकता का आवेष्ठन भी मिलेगा। प्रकृति की तरह यह अध्यात्म भी साधन था, साध्य नही, अभिव्यक्ति था, अभिप्रेत नही। उसमें हीगल, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहस आदि का प्रभाव भी देखा जा सकता है पर अन्तत यह एक रोमाटिक कवि का अध्यात्म था, सत का नही।

जिसतरह 'सौदर्य-लक्ष्मी स्तव' के विधाता शेली ने प्रकृति में एक महती शक्ति की चचल, मधुर और रहस्यमय छाया देखी थी उसी तरह पत ने भी

प्रकृति में लोकोत्तर सत्ता का 'मौननिमंत्रण' सुनना चाहा है। पंत के हृदय-नयन सरोवर के शान्त हृदय में उठनेवाली चंचल-विह्वल उर्मियों में अनन्त अभिलाषाओं का उन्मेष देखते है और उसकी शांति में 'अनन्त' का प्रशान्त संकेत—

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर
हो उठता चंचल, चंचल ?

सं चिर उत्कण्ठातुर
जगति के अखिल चराचर
यों मौन-मुग्ध किसके बल !

—पृ० १२

संध्या की सघन निस्तब्धता को झंकृत कर देनेवाले झींगुर भी अपने भीतर एक असाधारण की उपस्थिति का परिचय देते है।

झींगुर के स्वर का प्रखर तीर, केवल प्रशान्ति को रहा चीर,
संध्या-प्रशान्ति को कर गँभीर।
इस महाशान्ति का उर उदार, चिर आकांक्षा की तीक्ष्ण धार,
ज्यों बेध रही हो आर-पार।

—पृ० ८४

प्रकृति के कण-कण में व्याप्त इस अनन्त अनिर्वचनीय सौदर्य-सत्ता ने विस्मय-विमुग्ध किया है। यह विस्मय-भावना छायावाद और रहस्यवाद का संगम-स्थल है। इससे आगे का क्षेत्र रहस्यवाद का है। इस विस्मय से जिज्ञासा उत्पन्न होती है जो रहस्यवाद का प्रस्थान-विन्दु है। पंत जी की कविताओं में छाया और रहस्य की इस संधि-भूमि का ही विशेष चित्रण हुआ है। उनकी 'मौननिमंत्रण' शीर्षक कविता छायावाद और रहस्यवाद दोनों के उदाहरणस्वरूप उपस्थित की जाती रही है और अनेक

छाया और रहस्य की संधि-भूमि

सुधी समीक्षक छायावाद ओर रहस्यवाद को समानार्थी मानते रहे है। 'गुञ्जन' की 'चाँदनी' शीर्षक कविता भी इसी सन्धि-भूमि में रची गई है। वह आत्मा के साथ विश्वात्मा को भी उपस्थित करती हे। एक ओर वह दुलहिन बनकर सेज पर सोने का उपक्रम करती है, अस्फुट स्वप्नो का हरा ग्यनी है ओर दूसरी ओर सगुण-निगुण के बीच छिपे 'अनिर्वच' की रहस्य--भावना को भी उपस्थित करती जान पडती है—

वह है, वह नही, अनिर्वच,'
जग उसमें, वह जग में लय,
साकार-चेतना-सी वह,
जिसमें अचेत जीवाशय ।१

—पृ० ८१

'एक तारा' एक जगकातर व्यक्ति का प्रतीक होने के साथ ही 'अनन्त का मुक्त मौन' भी है। प्रकृति ने पत जी को चेतन 'छबि' के साथ 'भेद भरे सदेश' और 'गूढ सकेत' भी दिये है।

खोल कलियो ने उर के द्वार
दे दिया उसको छबि का देश,
बजा भौंरो ने मधु के तार
कह दिये भेद भरे सदेश,
आज खोये खग को अज्ञात
स्वप्न में चौका गई प्रभात,
गूढ सकेतो में हिल पात
कह गए अस्फुट बात,

---

१ नहि निरगुन नहि सरगुन जानौ।
निरगुन सगुन माझ लुपानौ ॥

—महात्मा अक्षर आनन्द

इन्ही में छिपा कही अनजान
मिला कवि को निज गान ।

—पृ० ७८

हाँ, जिसतरह 'गुञ्जन' में छायावाद की पलायनवृत्ति की मात्रा न्यून है, उसी तरह छायावाद के विषाद की भी। छायायुग में जहाँ 'निराला सबसे अधिक दृढ रहे, वहाँ पत सबसे अधिक प्रसन्न'। 'गुञ्जन' के रचना-काल में भारतीय दर्शन के अध्ययन-अनुशीलन ने उनके मन को अस्थिर वस्तु जगत् से हटाकर एक चिरतन भाव-जगत् में स्थापित भी किया था। अत 'गुञ्जन' में 'ग्रथि' की वेदना और 'पल्लव' की पीर भी दूर हो गई है। इसके गीतो में विरह की रागिनी नही, प्रणय के मादक तार बजते है। 'गुञ्जन' के गीत आशा में धुले और विश्वास में पले है।

छायावाद की वेदना और पत जी

तुम आओगी, आशा में
अपलक है निशि के उडगण !
आओगी, अभिलाषा से
चचल, चिरनव, जीवन-क्षण ।

—पृ० ४५

'गुञ्जन' के सुकुमार 'छाया-वन' में सवत्र उल्लास का पराग मिलेगा, उसपर विषाद के बादल नही मडराते। उसके 'गृह-उपवन के पास' राशि-राशि 'हिम हास' लोटता है।

छायावाद पश्चिम की वैयक्तिकता-प्रधान स्वच्छद काव्यधारा का भारतीय स्वरूप था, अत उसकी अभिव्यजना वैयक्तिक थी। इस दृष्टि से छायावाद को मैं-शैली की कविता भी कह सकते है क्योकि उसमें अह का विस्फोट हुआ था। 'गुञ्जन' में प्रथम पुरुष का प्रयोग लगभग सवत्र हुआ है।

आत्माभिव्यजन

मैं चिर उत्कण्ठातुर

—पृ० १२

मैं नही चाहता चिरसुख
मैं नही चाहता चिरदुख

—पृ० १५

ना, मुझे इष्ट है साधन

—पृ० २३

मैं प्रेमी उच्च आदर्शो का

—पृ० २६

लगता अपूर्ण मानव-जीवन,
मैं इच्छा से उन्मन-उन्मन !

—पृ० २६

मैं नव नव उर का मधु पी,
नित नव ध्वनियो में गाऊँ

—पृ० ३६

लाई हूँ फूलो का हास,
लोगी मोल, लोगी मोल ?

—पृ० ७५

मुझे न अपना ध्यान,
कभी रे रहा न जग का ज्ञान !

—पृ० १०६

द्विवेदीयुग के इतिवृत्तात्मक काव्य की भाषा इतिवृत्त के अनुकूल सीधी-सादी, अभिधाविशिष्ट और सादृश्यमूलक अलकारो से युक्त थी।

शैली के प्रसाधन

अब काव्य के विषयो के साथ उसके प्रसाधन के उपकरण भी बदल गए। छायावाद की परिवर्तित अनुभूति ने अभिव्यक्ति का नवीन गवाक्ष खोला जिसकी भाषा व्यजना-विशिष्ट, उपचार-वक्र और सूक्ष्म-क्लिप्ट साम्यो पर आवृत

नवीन लाक्षणिक अलकारो—मानवीकरण, विशषण-विपर्यय (Transferred epithets), ध्वनि अलकार—आदि स युक्त है। 'चादनी' शीषक दोनो कविताए मानवीकरण के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। पहली में पोली चाँदनी रुग्न तापसी बाला का मानवी रूप धारण कर भोर की ज्योति म नवजीवन का वरदान माँग रही है—

वह स्वर्ण भोर को ठहरी
जग के ज्योतित आँगन पर
तापसी विश्व की बाला
पाने नवजीवन का वर ।

—पृ० ३८

और दूसरी में चाँदनी नवागता दुलहिन बनकर आई है और रात की सेज पर पाँव रखते समय लाज के मारे सिहरसहम रही है, लाख-लाख पुलको से भर रही है ।

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छबि की छुई मुईसी
मृदु मधुर लाज से मर-मर ।

—पृ० २९

विशेषण-विपर्यय के उदाहरणो मे तो पत का समस्त काव्य-साहित्य ओत-प्रोत है । 'गुञ्जन' में 'किरणो की करुण कोर' 'स्वप्नो की सजग भोर', 'छवि का मदिर तीर' आदि की पग-पग पर व्यवस्था है ।

किस स्वर्ग-किरण की करुण कोर
कर गई इन्हें सुख से विभोर ?
किन नव स्वप्नो की सजग-भोर ?

—पृ० ३२

पत जी के अप्रस्तुत विधान की एक ओर विशेषता है जिससे यह सिद्ध सिद्ध होता है कि उनमें सजनात्मक शक्ति और कल्पना का विपुल ऐश्वय

है। साधारणत अदृश्य उपमेय के लिए दृश्य उपमानो की योजना की जाती है, जैसे गुलाब-सा सुन्दर, वायु-सा चचल, गगन-सा व्यापक, सागर-सा गम्भीर इत्यादि। किन्तु पत जी ने कही-कही उस क्रम को उलट दिया है। ऐसे स्थलो पर वे दृश्य के लिए अदृश्य प्रस्तुतो का विधान करते है और रूप का बोध गुणो के द्वारा कराना चाहते है। 'भावी पत्नी' को (जो कवि की चित्रमयी कला का श्रेष्ठ उदाहरण है) कवि ने—

अप्रस्तुत-विधान की एक विशेषता

'मृदुल उर कम्पन-सी वपुमान'
'मधुरता, मृदुता-सी तुम प्राण !'
'सरल शैशव-सी तुम साकार'
'प्रणय का-सा नवगान'

—आदि कहा है।

छायावाद में एक असगति है—विद्रोह और पलायन की। वह विद्रोह लेकर आया था पर आदर न पाकर पलायनवादी बन गया था। वैसे तो उसका विद्रोही स्वर सर्वत्र रीति-नीति में सुनाई पडता है पर भाषा और छद में वह विशेष रूप से प्रगट हुआ है। निराला ने पिगल की कडियाँ तोडी है और पत जी ने पिगल के साथ व्याकरण की ग्रथियाँ भी ढीली की है। उन्होने चित्र-सौकुमार्य के लिए 'गुञ्जन', 'प्रभात', 'गर्जन' इत्यादि पुल्लिग शब्दो का स्त्रीलिङ्ग के रूप में व्यवहार किया है।

व्याकरण-स्वातत्र्य

'यह मेरे प्राणो की उन्मन गुञ्जन मात्र है।'
—विज्ञापन

करुणार्द्र विश्व की गर्जन
बरसाती नव-जीवन कण !
—पृ० २२

सालस सुख की सौरभ से
साँसो का मलय-समीरण।
—पृ० २७

छायावाद पर विदेश के रोमांटिक कवियों और स्वदेश के रवि बाबू की जो छाप पड़ी थी उसमें पंत जी ही सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि 'वीणा' रवीन्द्रनाथ की 'गीताञ्जलि' से, 'ग्रंथि' संस्कृत काव्य से और 'पल्लव' शेली, वर्ड्सवर्थ, कीटस्, टेनिसन आदि से प्रभावित है। पंत जी में शेली की व्योमविहारिणी कल्पना, कीटस् की मादक अनुभूति, टेनिसन की स्वर-माधुरी और वर्ड्सवर्थ का प्रकृति-प्रेम है। 'चाँदनी' की तुलना शेली की 'दी वेनिंग मून' से की जा सकती है।

पंत जी पर वाह्यप्रभाव

जग के दुख-दैन्य-शयन पर
यह रुग्णा जीवन-बाला
रे कब से जाग रही, वह
आँसू की नीरव माला!

पीली पड़, निर्बल, कोमल,
कृश-देह-लता कुम्हलाई,
विवसना लाज में लिपटी
साँसो में शून्य समाई।

—चाँदनी (पृ० ३८)

And like a dying lady, lean and pale,
Who totters forth, wrapped in gauzy veil

—*The Waning Moon* (*Shelley*)

"भावी पत्नी के प्रति', तथा 'मधुवन' की कविताओं में कीटस् की कला की मादकता है और 'नौकाविहार' में टेनिसन का-सा स्वरमाधुर्य। 'भावी पत्नी' में रवीन्द्रनाथ की उर्वशी की शब्द-प्रतिध्वनि भी है—

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात
विकम्पित उर मृदु, पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप

जडित पद नमित पलक दृगपात
पास जब आ न सकोगी प्राण
(भावी पत्नी के प्रति)

द्विधाय जुडित पदे, कम्पवक्षे, नम्र नेत्र-पाते
स्मितहास्ये नाहि चल, सलज्जित वासर शय्याते
स्तब्ध राते ।

—उर्वशी

छायावाद और पत

हिन्दी की छायावादी काव्यधारा में पतजी का एक विशिष्ट स्थान है। छायावाद ने प्रसाद जी की पंक्तियो में नयन खोले, सुनते है, मुकटधर पाण्डेय ने उसका नामसंस्कार किया और पत जी ने उसे लोकप्रिय बनाया। छायावाद के तीन प्रजापतियो में प्रसाद सबसे अधिक गरिमामय थे, निराला सबसे अधिक पौरुषपूर्ण और पत सबसे अधिक मृदुल कोमल-प्राण । प्रसाद जी ने छायावाद को कल्पना की एक-तानता दी, निराला ने उसे दर्शन की दृढता दी, महादेवी ने अपने हृदय की करुणा से उसे स्नात किया और पत जी ने उसे रूप की कोमलता, मन की प्रसन्नता और वाणी की स्निग्धता दी। छाया-वाद, एक प्रकार से, प्रकृति एव प्रेम-काव्य था और उसकाल में चेतन प्रकृति के मोहक चित्र सबसे अधिक पत जी ने ही उपस्थित किये थे। तब पत जी की कविता का प्रभाव महादेवी जी पर भी पडा था। छायायुग में पत जी ने पिगल के साथ व्याकरण की कड़ियाँ भी तोडी थी और उन्होंने पहली बार 'पल्लव' की भूमिका में छायावाद के वहिरग पर प्रकाश डाला था तथा उसके स्वरूप का निर्धारण किया था। यही नही, जब छायावाद के भाव, भाषा, छद की कटु आलोचना हो रही थी और छायावादी कवियो के कार्टून बन रहे थे तब पत जी ने दृढता से छायावाद के पक्ष का समर्थन किया था। 'गुजन' की एक कविता का पूर्वपक्ष तत्कालीन आलोचकों की लाछना को उपस्थित करता है और उत्तरपक्ष छायावादी कवियो की सफाई को ।

लाछना-पक्ष—

तेरा कैसा गान,
विहगम ! तेरा कैसा गान ?
न गुरु से सीखे वेद-पुराण,
न षड्दर्शन, न नीति-विज्ञान,
तुझे कुछ भाषा का भी ज्ञान,
काव्य, रस, छन्दो की पहचान ?
न पिक प्रतिभा पर कर अभिमान,
मनन कर, मनन, शकुनि-नादान !

दूर, छाया-तरु-बन में बास,
न जग के हास-अश्रु ही पास,

छोड पखो की शून्य उडान,
वन्य-खग ! विजन-नीड के गान ।

सफाई-पक्ष—

मेरा कैसा गान,
न पूछो मेरा कैसा गान !

मुझे न अपना ध्यान,
कभी रे रहा न जग का ज्ञान !
सिहरते मेरे स्वर के साथ
विश्व-पुलकावलि से तरु-पात,
पार करते अनन्त अज्ञात
गीत मेरे उठ साय-प्रात,

गान ही में रे मेरे प्राण,
अखिल-प्राणों में मेरे गान ।

—पृ० १०६

'गुंजन' में जहाँ एक ओर जीवन का मंथन और धरती के गीत हैं वहाँ दूसरी ओर छायावन के गीत-विहग का कलरव भी । एक में शिवं की आराधना है और दूसरे में सुन्दरं का आह्वान । एक जीवन के लिए उपयोगी है, दूसरा कला के लिए मनोरम । और, कवि के प्राणों का गुञ्जन, उसकी आत्मा की झनकार और उसकी कोमल कांत पदावली की पायल तो दूसरे में ही सुनाई पड़ती है—

हँस पड़े कुसुमों में छबिमान
जहाँ जग में पद-चिह्न पुनीत,
वहीं सुख के आँसू बन, प्राण !
ओस में लुढ़क, दमकते गीत !

—पृ० १०८

गुंजन में रहस्यवाद

प्रकृति-रहस्यवाद 'चिर्जित घाटी के कोमल-प्राण कवि पंत आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रकृति सम्बन्धी रहस्यवाद १ के प्रवर्त्तकों में है। उनके लिए सरित-प्रवाह जड जलधार नहीं है वरन् उसमें चेतना को नियन्त्रित करनेवाला चिरविकासपूर्ण आत्मा का अस्तित्व है——

आत्मा है सरिता के भी,
जिससे सरिता है सरिता,
जल जल है, लहर लहर है,
गति गति, सृति सृति चिरभरिता।

——पृ० १८

सर्वचेतन-वादिता इन पंक्तियों में हम कवि की अनुभूति को विस्तृत होकर सर्वचेतनवादिता (Pantheism) के क्षेत्र में विकसित होते हुए देखते है।

---

१ स्परजन आदि के अनुसार रहस्यवाद के अनेक प्रकार, सम्बन्ध की दृष्टि से, माने गए हैं, जैसे——

१ भक्ति सम्बन्धी रहस्यवाद (Devotional mysticism)
——दादू, मीरा, महादेवी आदि।

२ दर्शन सबधी रहस्यवाद (Philosophical mysticism)
——निराला आदि।

३ प्रकृति सम्बन्धी रहस्यवाद (Nature mysticism)
——पंत, वर्ड्सवर्थ आदि।

४. प्रेम सम्बन्धी रहस्यवाद (Love mysticism)
——प्रसाद, शेली, भारतीय आत्मा आदि।

५ सौंदर्य सम्बन्धी रहस्यवाद (Beauty mysticism)
——कीट्स आदि।

६ शिशु सम्बन्धी रहस्यवाद (Child mysticism)
——रवीन्द्र, ब्लेक आदि।

अन्त-सौंदय

कवि का मन प्रकृति-सुन्दरी के वाह्य रूपालकारो पर उतना नही टिकता जितना प्रकृति की आत्मा के 'चिरधन' पर। उसके लिए प्रकृति दृष्टि का विषय नही, अनुभूति की वस्तु है। वह सवय प्रकृति के व्यक्त रूपा का वणन बडे मनोयोग से करता है पर पत के लिए--

वह खडी दृगो के सम्मुख ,
सब रूप, रेख, रँग ओझल,
अनुभूति-मात्र-सी उर में
आभास शान्त, शुचि, उज्ज्वल !

--पृ० ९१

पत के हृदय-नयन सरसी के हृदय मे उठनेवाली उर्मियो मे अनन्त अभिलाषाओ का उन्मेष देखता है ओर उसकी शाति मे अनन्त का प्रशात सकेत--

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर
हो उठता चचल, चचल ?

.. .. ..

मैं चिर उत्कठातुर
जगती के अखिल चराचर
ये मौन-मुग्ध किसके बल !

--पृ० ९२

अलौकिक ज्योति और विस्मय-भावना

इस भाँति प्रकृति के अणु-अणु में अभिव्याप्त अनन्त की ज्योति ने कवि को विस्मय-विमुग्ध किया है। यही विस्मय भावना १ रहस्यवाद की जननी है। विस्मित ज्ञाला में

---

१ विस्मय की यह भावना पत जी में इतनी अधिक है कि कुछ लोग उन्हें रहस्यवादी न मानकर केवल विस्मयवादी मानते हैं।

ज्ञेय के प्रति जिज्ञासा का होना स्वाभाविक है। इस विस्मय--भावना ने कवि के मन में जिज्ञासा उत्पन्न की है जो रहस्यवाद का प्रस्थान-बिन्दु है। कवि को जिज्ञासु प्राण उस अमर अनन्त, उस 'चिरधन' के अनुसधान में आकुल-से है—

क्या मेरी आत्मा का चिरधन ?
मैं रहता नित उन्मन-उन्मन ।

जीवन की उस परम निधि के अभाव में, जिसके प्रेम-सूत्र में अखिल सस्मृति ग्रथित है और जिसके सगीत का स्वर-विस्तार शान्त को अनन्त से मिलाता है, कवि को सारा ससार सूना-सूना, अस्तव्यस्त और विशृखल लगता है—

आते कैसे सूने पल
जीवन में ये सूने पल ?
जब लगता सब विशृखल,
तृण, तरु, पृथ्वी नभ-मण्डल ।

—पृ० १३

पीडा और आत्म-विस्तार

ऐसे ही विषादपूर्ण क्षणो में कवि 'बन की सूनी डाली पर' भी मुस्कुरानेवाली कलियो को और सागर मे पलभर के लिए उठकर विलीन हो जानेवाले बुद्बुदो को देखता है। तब उसे लगता है कि जिसको वह चिरकाल से ढूढ रहा है उस सत-चित्-आनन्द के रहस्य को प्रकृति ने पा लिया है। वस्तुत खुदी को भूल जाना ही खुदा को पा लेना है। अह के तिरोभाव में ही मानव के स्वर्ग का निवास है। निज योग-क्षेम की लघु सीमा के उसपार जाकर आत्मविस्तार करना ही असीम होकर अनन्त मे मिल जाना है। इस आत्मविस्तार के अभाव में मानव की अपूर्णता है, दर्द है और इसके आविर्भाव में उसकी पूर्णता है, आनन्द है। प्रकृति ने अपनी व्यष्टि को समष्टि में सक्रमित कर दिया है, इसलिए वह सदा प्रसन्न है। जल-कण तभी तक नगण्य है जब तक वे अपने को सागर की जलराशि से अलग रखते

है, किन्तु ज्योंही उन्होंने अपने को सागर में निमज्जित कर दिया त्योंही वे सम्पूर्ण सागर की भाति विस्तृत हो गए––

कँप कँप हिलोर रह जाती––
रे मिलता नही किनारा
बुद् बुद् विलीन हो चुपके
पा जाता आशय सारा ।

––पृ० ३१

कली ने परमानन्द के इस मम को जाना है । इसलिये वह प्रभात की कनक बेला में एक निर्मल मुस्कान के साथ खिलती है और ससार को गधदान दे सध्या के धूमिल प्रहर में एक लापरवाह हँसी के साथ चू पडती है। फूल के जीवन की इस कला के सामने भाग्य का कुचक्र, जगत् की कठोरता और यम की फाँस––सभी विफल हो गए। कोई उसके अधरो से मुस्कुराहट न छीन सका ।

प्रकृति में आनन्द-सकेत और उल्लासानुभूति प्रकृति ने कवि को आनन्द का जो सकेत दिया है उसे पाकर वह उमगो में नाच उठता है । उसके पुलकित प्राणो से गीत के निर्झर फूट पडते हे । पत जी की रहस्य-वादी रचनाएँ, अधिकाशत प्रकृति के इसी सकेत-दर्शन से अनुप्राणित है––

आज शिशु के कवि को अनजान
सिल गया अपना गान !
खोल कलियो ने उर के द्वार
दे दिया उसको छबि का देश,
बजा भौरो ने मधु के तार
कह दिये भेद भरे सदेश,

––पृ० ७३

इस सकेत-दर्शन के उपरान्त अनुभावक की सारी शकाएँ, अविश्वास और निराशा तार-तार होने लगती है । अखिल लोक उसका परिवार

बन जाता है। इसके सुख-दुःख, आशा-निराशा, जन्म-मरण सभी एक समान ही प्रिय हो उठते हैं—

प्रिय प्रिय विषाद रे इसका,
प्रिय, प्रि' आह्लाद रे इसका।

उसका अस्तित्व 'अहं' को खोकर उस सागर की भांति व्यापक बन जाता है जो सुख-दुःख के कगारो को अपनी मौज में डुबाकर लहराता रहता है—

सुख-दुःख के पुलिन डुबाकर
लहराता जीवन सागर।

—पृ० २०

दर्शन में यही ब्रह्मात्मैक्य है, कैवल्य है। इस स्थिति पर पहुँचकर व्यक्ति का वैयक्तिक सुख-दुःख कोई महत्त्व नहीं रखता। जिस-तरह परिवर्तनशील और दृश्य जगत् के भीतर एक अपरिवर्तनशील और अरूप सत्ता बैठी है उसी तरह छद्मवेषी सुख-दुःख से होकर चलनेवाला जीवन सत्य, अमर एवं शाश्वत है—

अस्थिर है जग का सुख-दुःख
जीवन ही नित्य चिरंतन!
सुख-दुःख के ऊपर मन का
जीवन ही रे अवलम्बन।

—पृ० २०

इस प्रकार की आनन्दानुभूति को पाकर रहस्यवादी कवि अवसाद-पूर्ण क्षणो में भी मुस्कुराता रहता है और जीवन की कठोरता से लापरवाह हो जाता है। इसी अनुभूति से अभिभूत हो मीरा ने जहर का प्याला पी लिया था, मंसूर 'अनलहक' कहकर सूली पर चढ गया था और कबीर ने मरने के समय विवाह की पोशाक पहनी थी। आधुनिक कवियो में भी इस रहस्यानुभूति का तत्त्व मिलता है यद्यपि वह साधनात्मक कम और कलात्मक अधिक है। जिसे संत कवियो ने पुरुष और सूफियो ने नूर कहा है शायद

पत के प्रतीक उसे ही पत जी ने विहग कहना चाहा है। विहग उस अमर सत्ता का प्रतीक है जो जन-जीवन रूपी अक्षय-वट को सदा गुलजार रखता है——

> **रिक्त होते जब-जब तरु-वास**
> **रूप धर तू नव नव तत्काल,**
> **नित्य-निनादित रखता सोल्लास**
> **विश्व के अक्षय-वट की डाल।**
>
> ——पृ० ८३

निस्तब्ध रात्रि के शेष प्रहर में जब ससार नीद की पलको पर सोया होता है, नीड के पछी सपनो का मृदु-मोहक गीत गाते है। उनके कलरव के सरगम पर सुनहली किरणो का प्रभात उतरता है। तब सरोवर के कमल खिल पडते है, पराग-पीडित भ्रमर उनके दलो पर मडराने लगते है और उनके गुजन से सारा सरोवर-प्रदेश निनादित हो उठता है। उसी-तरह ससार के आदि निविड प्रहर में, जब चारो ओर अनस्तित्व की जडता छायी थी, सृष्टिकर्त्ता ने, अतरिक्ष के राजकुमार ने, माया का गीत गाया था। फलस्वरूप उस विश्वव्यापी अधकार को भेदकर पहला दिनमान निकला था। ससार के उस प्रथम प्रभात में अकिञ्चन जगत् सोने से पट गया था। तब चेतन ससार बसा था, प्रलय-जल मे जीवन-सरोज खिला था।

> **सुप्त जग में गा स्वप्निल-गान**
> **स्वर्ण से भर दी प्रथम-प्रभात**
> **मञ्जु-गुजित हो उठा अजान**
> **फुल्ल जग-जीवन का जलजात।**
>
> ——पृ० ८२

यहाँ विहग सृष्टिकर्त्ता का, स्वप्न माया का और कमल चेतन मानव का प्रतीक है।

ब्रह्म की व्याप्ति अनन्त का यह सगीत सृष्टि में निरन्तर चल रहा है। यदि यह न होता तो दुख-दर्द की दुनिया में टिकना

कितना कठिन हो जाता ? 'को ह्येवान्यात कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ।'

दूर बन के ओ राजकुमार !
अखिल उर-उर में तेरे गान,
मधुर इन गीतो से, सुकुमार ।
अमर मेरे जीवन औ' प्राण ।

—पृ० ८३

जिसने उसके स्वर में अपना तार मिला लिया वह आनन्दमय हो गया, स्वय आनन्दघन बन गया ।

जो दुनियादार है और जिनकी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी है वे इस सगीत के मर्म को समझ नही पाते, पर जो मर्मी है वे 'शब्द' की चोट से विकल हो उठते है। लगता है कि आनन्दघन की बॉसुरी उन्हे रास में सम्मिलित होने के लिए बुला रही है। आनन्द-केलि का यह निमत्रण रहस्यवाद का सबसे प्रमुख स्वर है। यदि जिज्ञासा रहस्य-वाद का प्रस्थान-बिन्दु है तो केलि उसकी केन्द्रस्थली। आनन्द-केलि का निमत्रण पा अनुभावक की आत्मा अनु-रक्त होकर उस अनन्त के साथ एकाकार हो जाना चाहती है। एकाकार की यह भावना दाम्पत्य सबध में अत्यत सघन हो जाती है क्योकि पुरुष और नारी दोनो अपनी इकाई को भूलकर इस सम्बन्ध पर आत्मसमर्पण करते है, इसलिए रहस्यवादी कविता में दाम्पत्य-भावना की प्रधानता रहती है। अनन्यता के इस मधुक्षण में ज्ञान की गठरी पटककर अपने अचल में प्रेम के ढाई अक्षर-अक्षत् लेकर कबीर 'राम की बहुरिया' बन जाते है। मीरा 'पचरग चोला' पहनकर अपने सॉवरे के साथ 'झिरमिट' खेलती है। रवीन्द्रनाथ ने अनन्त की आनन्त-केलि का निमत्रण सुना है—सुन्दर तुमि ऐसे छिले आजि प्राते, अरुण वरण पारिजात लये हाते। इस आनन्द-स्थिति में अनुभावक अपने योग-क्षेम की सुध भूल जाता है, ससार से लापरवाह हो जाता है। पन्त जी ने भी अतरिक्ष के वातायन से

ब्रह्म-केलि और एकाकारिता

आनेवाले संगीत के स्वर को सुनने का दावा किया है। उनके प्राण कंटकित हुए है। उस पार जाने के लिए उनकी वाणी व्याकुल हुई है।

मुझे न अपना ध्यान,
कभी रे रहा न जग का ज्ञान!
सिहरते मेरे स्वर के साथ
विश्व-पुलकावलि-से तरु पात,
पार करते अनन्त अज्ञात
गीत मेरे उठ साय-प्रात,

—पृ० १०६

रहस्यवाद और सृष्टि दर्शन

चूंकि भगवान् घट-घट व्यापी है, इसलिए प्रकृति का कोई भी पदार्थ अनित्य नही है। अनन्त का अमर सयोग पाकर प्रत्येक वस्तु शाश्वत बन चुकी है। मनुष्य की आँखो पर अज्ञान का पर्दा पड गया है, इसलिए वह अपने अस्तित्व की चिरतनता भूल बैठा है। आत्मबोध होते ही उसका भ्रम दूर हो जाता है। जीव, जगत् ओर ब्रह्म एकतान हो जाते है।

शाश्वत नभ का नीला विकास,
शाश्वत शशि का यह रजत-हास,
शाश्वत लघु-लहरो का विलास।
हे जग-जीवन के कर्णधार!
चिर जन्म-मरण के आर-पार
शाश्वत जीवन-नौका-विहार।
मै भूल गया अस्तित्व-ज्ञान,
जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझ को अमरत्व-दान।

—पृ० १०४

'सूधी ओर न देखई, देखै दर्पन पृष्ठ' वाला 'देहाध्यास' मनुष्य के भ्रम की जड है। मनुष्य अपने भीतर न देखकर जगत् को देखता है और फिर

अपने को। इसलिए वह ससार का कष्टमय और अपने को अकेला समझता है। पर जब व्यक्ति दृश्य आवरणों के भेद में न पड, नाम-रूप को भेदकर अपने अन्तरतम में झाँकता है और फिर बाहर दष्टि डालता है तब उसे मालूम होता है कि ससार एक ही आत्मा का रूप-विस्तार है। तब ससार में वह अपने को अकेला नही पाता और न ससार ही उसे दु खपूर्ण दीखता है। अत आत्मदर्शन ही जगदर्शन का माध्यम है।

गुजित अलि सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन अधकार,
हलका एकाकी व्यथा-भार !
जगमग-जगमग नभ का आँगन, लद गया कुद कलियो से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन !
—पृ० ८६

आत्मदर्शी रहस्यवादी घट में ब्रह्म का दर्शन करता है। प्रसिद्ध रहस्य-वादी ब्लेक ने रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए कहा है कि उसमें कण में विश्व, वन-फूल में स्वर्ग, करतल में असीमता और घटी में अनन्त का नाँधा जाता है—

To see a world in a grain of sand
And a Heaven in a wild flower,
Hold Infinity in the palm of your hand
And Eternity in an hour

आत्मा की नित्यता और बधन-मुक्ति

और चूकि भगवान् घट-घट-व्यापी है, इसलिए उसकी प्राप्ति के हेतु वैराग्य धारण करना आवश्यक नही। कबीर ने उसे पाने के लिए गार्हस्थ्य की चादर नही उतारी। क्रान्तिदर्शी रवीन्द्र का उद्देश्य भी वैराग्य-जनित मुक्ति की प्राप्ति नही है—वैराग्य-साधने मुक्ति से आमार नय। असख्य बधन माझे महानन्दमय लभिव मुक्तिर स्वाद। पत जी भी ससार के प्रेम-बधन १ के बीच ही मुक्ति की कामना करते हैं—

आज वर दो मुक्ति आवे बधनो की कामना ले।
—महादेवी वर्मा

तेरी मधुर मुक्ति ही बधन ।

अत पतजी का रहस्यवाद शुष्क अद्वैतवाद से भिन्न है क्योकि उसमें भक्ति का योग है। वैसे उन्होने भक्तिपरक पद भी लिखे है, जैसे--

नीरव तार हृदय में
गूंज रहे हैं मजुल-लय मे,
अनिल-पुलक से अरुणोदय में ।
नीरवतार हृदय में--
चरण-कमल में अर्पण कर मन,
रज-रजित कर तन,
मधुरस मज्जित कर मम जीवन
चरणामृत-आशय में ।
--पृ० ८०

इस बधन-मुक्ति का आधार है आत्मा की नित्यता। 'न जायते म्रियते वा कदाचन' अथवा 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' रहस्यवाद की अद्वैत-भावना का ही समर्थन करता है। जीवन के बीच रहकर जीवन के दद से मुक्त हो जाना रहस्यवाद की साधना है जिसे कबीर ने 'सहज'-साधना कहा था।

अत में एकबार फिर निवेदन करना चाहता हूँ कि आधुनिक छाया-वादी-रहस्यवादी कवियो में साधनापूत सहज प्रकाशित रहस्यवाद नही वरन् कलात्मक, रहस्य-चित्र मिलेंगे। वे सभी स्वभाव से कवि थे, न कि सत। उनमें इश्कमजाजी की ही प्रधानता है, इश्कहकीकी की नही। अत पत जी की रहस्यवादी रचनाओ का, ज्ञान के काटो पर, मूल्याकन करना वृथा है। वे तो विशुद्ध गीति-काव्य के उदाहरण ह जिनमें हृदय का रस और प्राणो का सगीत है। उन्होने उचित ही कहा है कि गुजन 'मेरे प्राणो की उन्मन गुजन मात्र है'।

भाषा-शैली

शैली का स्वरूप

शैली भाषा का व्यक्तिगत प्रयोग मात्र नहीं, वह अभिव्यक्ति की असख्य व्यक्त-अव्यक्त प्रक्रियाओ का एक सामूहिक नाम है ।

अभिव्यक्ति का यह आयास जितना व्यक्तिगत है, उतना ही युगगत और समाजगत । प्रत्येक युग अपनी अगडाई को एक विशेष प्रकार की शैली में प्रगट करता है क्योंकि युगवाणी के तूफान को बाँधने में युगान्त के छद छोटे पडते है । इसलिए जब समय की सक्राति में भावना करवट बदलती है तब अतरग के आवर्त्तन के साथ ही बहिरग का विवर्त्तन भी आरम्भ हो जाता है ।

शैली और युगान्तर

जयकाव्य की पहली ललकार ने अपने बोलो के लिये अपभ्रश को छोडकर एक नयी भाषा ली थी *अवहट्ठ या डिंगल की*, दूहा और गाथा के अतिरिक्त नये छद लिये थे छप्पय, तोमर, तोटक आदि के । निर्गुण भक्ति-काल सवर्ण के प्रति अवर्ण की, विप्र के प्रति अन्त्यज की, अर्थात् धार्मिक व्यक्तिवाद के प्रति वैयक्तिक स्वातन्त्र्य की प्रबल जनक्राति का वाहक था । धार्मिक क्षेत्र के इस जनपदीय आन्दोलन ने साहित्य के क्षेत्र में भी जनपद की 'मधुक्कडी' भाषा ली, जनपद का छद लिया—गीत और जन-जीवन का नया अलकार लिया—उलट बॉसी ।

इस लोक भाषा और लोक गीत के निर्गुण को जब तुलसी ने साकार किया तब अर्द्धालियो के चरणान्त में गुरु मात्राएँ रखी जिनपर चढकर भाव साकार होता है । रीतिकाल की दरबारी सस्कृति ने साहित्य में जिस चमत्कारवाद को जन्म दिया उसने अपने अनुकूल कवित्त और सवैया के छद गढे । उन्नीसवी शताब्दी में जब भारतीय वाङ्मय ने क्राति का आवाहन किया तब उसका अनल किरीट ब्रजभाषा के सिर पर नही रखा

जा सकता था। अब 'भारत के कृष्ण ने मुरली छोडकर पाञ्चजन्य उठा लिया था'। सुप्त देश की वाणी जाग उठी थी। ब्रजभाषा 'रात्रि की अकर्मण्य स्वप्नमय ज्योत्स्ना' की भाषा थी, उसमें 'दिवस का सशब्द कार्य व्यग्र प्रकाश' न था। प्रेम-कुजा में पली असूयम्पश्या ब्रजबोली की सुकुमारता काल के अग्निस्फुलिंग को वरेण्य न थी। उसकी एकान्तता युग की नाना चिंताओ की व्याख्या करने में असमर्थ थी। अत युग के कर्त्तृत्व ने खडी बोली की भाषा ली जो विवेचनात्मक गद्य के समीप थी। उसने खडी बोली के छद लिये, गाम्यछदो को सँवारकर अपनाया और बगला तथा उर्दू पिंगल के सयोग से कुछ नये छद गढे।

भारतेन्दु-काल ने खडी बोली को एक सर्वमान्य रूप दिया और द्विवेदी-काल ने उसे काव्योपयोगी बनाया। द्विवेदी-काल खडी बोली का आग्रह लेकर चला था और वह आग्रह समय के वात्याचक्र से उत्पन्न हुआ था। यह खडी बोली का शास्त्रीय (कलासिकल) युग था जब उसके गद्य और पद्य की पक्की व्यवस्था की गई थी। यह 'लोकचेतना के व्यावहारिक पक्ष को लेकर चलनेवाला, सुधार और नैतिकता से शकित,' इतिवृत्तात्मक युग था। इस उपयोगितावादी युग ने अपने इतिवृत्त के अनुकूल अभिव्यक्ति का सरल मार्ग ढूढ लिया था। तब काव्य की कसोटी थी भाषा की शुद्धि और अर्थ की सफाई। यह विश्लेषण का युग था, सश्लेषण का नही। लोक चेतना के व्यवहारवाद ने व्यावहारिक भाषा का पल्ला पकडा था। गद्य की भाषा पद्य में बरती जा रही थी जिसमें साकेतिकता की अपेक्षा पूर्णता प्रश्रय पाती और उपचारवक्रता एक दोष मानी जाती थी। यह एक शुष्क सात्विक आचारवादी युग था। इस आदर्शवादी रूक्षता का प्रभाव तत्कालीन भाषा-शैली पर भी पडा था। भाव और भाषा दोनो दृष्टियो से यह एक 'पुरुष काल' था।

भाषा-शैली और द्विवेदी-युग

पर यह एक समस्यासकुल बहुज्ञ काल था। नवोदित शिक्षित युवक-समुदाय की इस बहुज्ञता के कारण साहित्य में 'बहुविध विषय-विन्यास'

आया, शैली में बहुविषयोपयोगी विविधता आई और भाषा की शब्द-सम्पत्ति की अभिवृद्धि हुई तथा उसमें वह लचक आई जो उसे सहज ही भिन्न-भिन्न दिशाओं में मोड़ सके।

भाषा-शैली और छायायुग

द्विवेदी-काल पौरुषपूर्ण होकर भी 'दो दशाब्द मात्र जीवित रहने वाला' अल्पायु युग था। जब गांधी जी राजनीति को दर्शन की किरणों से सजाकर असहयोग को अहिंसा में बाँध रहे थे तब इधर उमर खैयाम के प्रेम-दर्शन, गीताञ्जलि की 'नीरव क्रांति', हीगल के सौंदर्यवाद और अंग्रेज रोमांटिक कवियों की नीतिविहीनता के प्रभाव ने हिन्दी में एक नवीन 'हृदयवाद' को जन्म दिया था। इस नये 'मतवाद की अराजकता में द्विवेदी-काल के सरल-शुभ आदर्श और भाषा-व्यवस्था' दोनों विलीन होने लगे। अध्यात्म के आवरण में शृंगार आया। सीमा असीम के आलिंगन करने का व्याज करने लगी। कल्पना भूमि छोड़ आकाशगामिनी हुई। सुन्दर का आवाहन हुआ। कला पुरुष का परिधान उतारकर नारी-सुलभ शृंगार करने लगी। स्वभावतः भाषा ने इतिवृत्तात्मक स्वरूप छोड़कर लाक्षणिक वैचित्र्य, अप्रस्तुत प्रतीक और चित्रमयता को ग्रहण कर लिया। अब अभिव्यक्ति का साधन अलंकार नहीं, चित्र और संगीत था।

शैली का वैयक्तिक पहलू

यह तो छायावादी पंत की शैली के अध्ययन का ऐतिहासिक पृष्ठाधार हुआ। इतिहास से अलग शैली का वैयक्तिक पहलू भी होता है। एक व्यक्ति के शिक्षण और संस्कार दूसरे से भिन्न होते हैं, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति समकालीन व्यक्तियों के समक्ष होकर भी विशिष्ट होती है। पोप ने शैली को विचारों की पोशाक कहा है। कार्लाइल को इस परिभाषा में अति-व्याप्ति दोष दिखाई पड़ा। उसने पोप की व्याख्या में एक संशोधन उपस्थित करते हुए कहा कि शैली 'विचारों की पोशाक' नहीं जिसे जब चाहें उतार दें, वह तो 'विचारों की चमड़ी' है। चमड़ी पर बाहर के ताप, हिम, वर्षा

आदि का प्रभाव तो पडता है पर व्यक्ति के भीतरी राग से भी उसका गहरा सम्बन्ध होता है ।

शैली का एक तीसरा पहलू भी है, जो पूर्वोक्त अंगो की भॉति सबमे समान भाव से नहीं रहता । यह शैली का शास्त्रीय पक्ष है । यह शैली की शक्ति और सामर्थ्य का पहलू है । इसमें शैलीकार की बौद्धिक, भावुक और सामजस्य बोधक क्षमताओ का परिचय मिलता है । शैली का औचित्य ज्ञान, भाषा का लचीलापन, शब्दो की उपयुक्तता, वाक्यो का स्वरूप-विधान, वर्ण्यवस्तु की आकर्षणशीलता---ये सभी इसके अतर्गत आते है ।

शैली का शास्त्रीय पहलू

अत हमें ऐतिहासिक, वैयक्तिक और शास्त्रीय---इन तीनो दृष्टियो से 'गुञ्जन' की भाषा-शैली का मूल्याकन करना चाहिए ।

पतजी की भाषा

छायाकालीन पत जी की भाषा में, अन्य छायावादी कवियो की भाषा की तरह, तत्समता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, चित्रमयता, सगीतात्मकता और अलकृति है ।

वैसे तो द्विवेदी युग की शब्द-साधना भी सस्कृत की छाया तले हुई थी, पर वह अपनी भाषा में *'सस्कृत की देव-वीणा'* का सगीत नही ला सका था । खडी बोली की शब्द-तत्री में सगीत की अवतारणा करने का श्रेय छायावाद को है । पत जी की भाषा उस सगीत की मधुरतम कडी है । पत की रुचि कोमल है, अत उनकी भाषा प्रशस्त होने के साथ ही कोमल-मधुर और सगीतप्राण है । विशुद्ध तत्सम भाषा में लिखी गई 'अप्सरा' आदि कविताओ में भी हरिऔध जी की कठोर शब्द-मैत्री या मैथिलीशरणजी के 'अरुन्तुद-वाक्य' न मिलेंगे, उनमें सस्कृत शब्दावलि के साथ कोमल कान्तता और प्रवहमानता मिलेगी ।

कोमल-प्रशस्त तत्समता

जग के सुख-दुख पाप-ताप,
तृष्णा-ज्वाला से हीन,

जरा-जन्म-भय-मरण-शून्य
यौवनमयि, नित्य-नवीन,
अतल-विश्व-शोभा वारिधि में,
मज्जित जीवन-मीन,
तुम अदृश्य, अस्पृश्य अप्सरी,
निज सुख में तल्लीन ।

—पृ० १००

उपर्युक्त पक्तियो की सामासिक पदावलियाँ भी सगीत के उपकूलो में बँधकर कितनी वेगवती हो गयी है । पत जी को भाषा-सघटन में जो सफलता मिली है उसका कारण यह है कि उन्होने सस्कृत शब्दावलि को हिन्दी की अनुरूपता म अपनाया है और उसके अनुकूल छदो का विधान किया है, पूव कवियो की तरह टाप प्रत्याल विशेषण आदि सस्कृत-व्याकरण के नियमो की रूढि नही मानी है । पत जी की लोकप्रियता का एक कारण उनकी वह भाषा है जिसने हिन्दी को अभूतपूव शब्द-लालित्य, नवीन अन्तर्स गीत और भावाभिव्यक्ति की नूतन शक्ति दी थी ।

शैली की दृष्टि मे छायावाद अगीत की वाणी है ।

लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता अत उपचार वक्रता—लाणिकता और प्रतीकात्मकता—उसकी भाषा का धर्म है । छायावाद अध्यातम और प्रकृति-प्रेम के व्याज मे रति-भावना की अभिव्यक्ति करने चला था, अत उसके हृदय में प्रेम और अधर पर रहस्य के बोल थे ।

कब से विलोकती तुमको
ऊषा आ वातायन से ?
सन्ध्या उदास फिर जाती
सूने गृह-के आँगन से !

——पृ० ४५

यहाँ प्रेयसी के ध्यान में मग्न कवि, यह न कहकर कि रात के सपनो के बाद प्रभात में उसकी आँखें उसे ढूढती है और सध्या के अलस प्रहर में

उसे न पाकर उसका मन उदास हो जाता है, यह कहता है कि आकाश के झरोखे से धरती की उस सौंदर्य-लक्ष्मी को देखने के लिए ही प्रभात में सूरज निकलता है और सन्ध्या उसके आँगन में उतरती है, पर उसे न पाकर उदास लौट जाती है।

पंत जी की इस लाक्षणिक भाषा का मुख्य आधार है विशेष्य-विशेषण-सम्बन्ध पर आधृत लक्षणा जिसे आधुनिक भाषा में विशेषण-विपर्यय कहते हैं। वे विह्वल भ्रमरों का गुञ्जन न कहकर अलियों का 'उन्मन गुञ्जन' कहेंगे।

छाया उन्मन-उन्मन गुञ्जन,
नव-वय के अलियों का गुञ्जन !

—पृ० १

यहाँ 'उन्मन' गुञ्जन के विशेषणरूप में प्रयुक्त है, पर वस्तुतः वह गुञ्जन का विशेषण न होकर, गुञ्जन करनेवाले विशेष्य भ्रमर का विशेषण है।

वैसे लक्षणा के और प्रकार भी मिल जायँगे। 'रे गंध-अंध हो ठौर-ठौर' अथवा 'गन्ध-अन्ध दिशि-वात' में अन्ध का अर्थ अंधा नहीं है क्योंकि उसका सम्बन्ध गंध से है। यहाँ साहचर्य-सम्बन्ध के कारण अंध का लक्ष्यार्थ होगा मदांध, मत्त आदि।

पंत जी के प्रतीक

पंत जी के प्रमुख प्रतीक हैं, मधु, मधुकर, गुञ्जन, सरोवर, लहर, मधुवन, बसन्त, तरु, कली, किसलय, फूल, शूल, गंध, स्वर्ण, वीणा, ऊषा, सन्ध्या, सरिता इत्यादि।

पंत-साहित्य में मधुकर प्राण का प्रतीक है, मधु अनुभूति या सुख का, गुञ्जन अन्तर्संगीत का, सरोवर अथवा वीणा हृदय का, बसन्त संयोग या यौवन का, तरु अथवा सरिता जीवन का, कली आशा का, किसलय प्रेम का, फूल सुख का, शूल दुःख का, लहर इच्छा का, गंध गुण का, ऊषा उल्लास का, संध्या वेदना का और स्वर्ण पवित्र भाव का।

जीवन-मधु-सचय को उन्मन,
करते प्राणो के अलि गुञ्जन ।

—पृ० १०

(मधु=जीवन की सरस अनुभूति)

अपने सजल-स्वर्ण से पावन,
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,

—पृ० ११

(सजल-स्वर्ण=सवेदनशील पवित्र भाव-तत्त्व)

तेरी मधुर मुक्ति ही बधन,
गन्ध-हीन तू गन्ध-युक्त बन,

—पृ० ११

(गन्ध=गुण)

फैली नव-मधु की रूप-ज्वाल

—पृ० १०

(मधु=वसन्त=यौवन)

यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिगन विरह-मिलन का,

—पृ० १६

(साझ=वेदना, उषा=उल्लास)

देखू सबके उर की डाली—
किसने रे क्या क्या चुने फूल
जग के छवि-उपवन से अकूल ?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम, शूल !

—पृ० १७

(कलि=आशा, किसलय=प्रेम, कुसुम=सुख, शूल=दुख)

जीवन की लहर-लहर से
हँस खेल-खेल रे नाविक !

—पृ० १८

(लहर=उपभोग की इच्छा, नाविक=सुखाकांक्षी व्यक्ति)

अपने मधु में लिपटा पर
कर सकता मधुप न गुञ्जन,

—पृ० २०

(मधु=सुख)

रे गूंज उठा मधुवन में
नव गुंजन, अभिनव गुंजन
जीवन के मधु-संचय को
उठता प्राणों में स्पन्दन !

—पृ० २७

(मधुवन=मन, गुंजन=नवीन अन्तर्संगीत)

गा-गा प्राणों का मधुकर
पीता मधुरस परिपूरन ।

—पृ० २७

(मधुरस=आनन्दानुभूति)

कँप-कँप हिलोर रह जाती—
रे मिलता नहीं किनारा !
बुद् बुद् विलीन हो चुपके
पा जाता आशय सारा ।

—पृ० ३१

(हिलोर=असंयमित इच्छा, बुद्बुद्=संयमित इच्छा)

सागर की लहर लहर में
है हास स्वर्ण किरणों का,

—पृ० १८

वह स्वर्ण भोर को ठहरी

—पृ० ३४

(स्वर्ण भोर=आशापूर्ण क्षण)

विजन-वन के ओ विहग-कुमार !
आज घर-घर रे तेरे गान,

. .

रिक्त होते जब-जब तरु वास
रूप धर तू नव नव तत्काल,
नित्य-निनादित रखता सोल्लास
विश्व के अक्षय-वट की डाल ।

—पृ० ८३

(विहग=अनन्त सत्ता, तरु=विश्व-जीवन)

प्रतीकात्मकता की दृष्टि से 'अप्सरा', 'विहग के प्रति' और 'एक तारा' विशेष द्रष्टव्य है । 'अप्सरा' उस अनिवर्च सौंदर्य-भावना की प्रतीक है जो प्रति युग में एक नवीन परिभाषा लेकर आती है—'प्रतियुग में आती हो रंगिणि ! रच-रच रूप नवीन ।' 'विहग' उस अनन्त-अमर सत्ता (ब्रह्म) का प्रतीक है जो जन-जीवन को सदा प्रसन्न रखता है । 'एक तारा' एक स्थित-प्रज्ञ, आत्मदर्शी व्यक्ति का प्रतिरूप है । यहाँ उसके आत्मविकास के सम्पूर्ण इतिहास का संध्या के नील पट पर सांध्यतारा की ज्योति से लिखा गया है ।

रही बात चित्रमयता, संगीतात्मकता और अलंकृति की । सो, उनपर विचार करने के पूर्व पंत जी की वर्ण और शब्द-साधना पर विचार कर लेना आवश्यक है क्योंकि चित्र, संगीत और अलंकार शैली के प्रसाधन हैं और शब्द उसका मूलाधार । पर, शब्द भी अक्षरों के योग से बना है, अतः अक्षर ही अंतिम इकाई है । पंत जी की भाषा में कोमल वर्णों की प्रधानता है । निराला जी ने पंत जी की भाषा को 'श-ण-ल-व'

पंत जी की वर्ण-साधना

स्कूल की भाषा कहा है जिसके आदि गुरु कालिदास हैं। हम 'गुञ्जन' की भाषा को 'न-र-ल-व-स' स्कूल की भाषा कहना चाहेंगे क्योंकि इस भाषा में उपर्युक्त वर्ण अन्य वर्णों की अपेक्षा अधिक बोलते हे।

बन-बन, उपवन—
छाया उन्मन-उन्मन गुञ्जन !
—पृ० १
('न' की प्रधानता)

आज बौरे रे तरुण रसाल
—पृ० ५०

तप रे मधुर मधुर मन !
—पृ० ११

अधरो पर मधुर अधर धर
—पृ० २३
('र' का बाहुल्य)

रूपहले, सुनहले आम्र-बौर,
नीले, पीले औ' ताम्र-भौर,
.. ...
बन के विटपो की डाल-डाल,
कोमल कलियो से लाल-लाल,
—पृ० १०

अरे अब जल-जल नवल प्रवाल
लगाते रोम-रोम में ज्वाल,
—पृ० ५०
('ल' का प्रधान्य)

करुणार्द्र विश्व की गर्जन
बरसाती नव-जीवन-कण !
—पृ० २२

रे गूंज उठा मधुवन में
नव गुंजन अभिनव गुंजन,

—पृ० २७

('व' और न का बाहुल्य)

सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर
निज सुख से ही चिर चचल मन,

—पृ० २६

सालस सुख की सौरभ से
साँसो का मलय समीरण ।

—पृ० २७

('स' का बाहुल्य)

इस वर्ण-बाहुल्य का कारण पंत जी की संगीत-सौंदर्य-प्रियता है। इन वर्णों के उच्चारण से मधुर संगीत-सा निःसृत होता है।

वर्ण-संगीत पंत जी ने श्रुति मधुरता के लिए जहाँ शब्दो का लिंग-विपर्यय किया है वहा अंत्यानुप्रास के संगीत के लिए कहीं-कहीं वर्ण-विपर्यय भी।

'गुञ्जन' में 'रे' की पुनरुक्ति का कारण भी वर्ण-संगीत है। " 'पल्लव' की कविताओ में मुझे 'स' के बाहुल्य ने लुभाया था, यथा—

अर्ध-निद्रित-सा, विस्मृत-सा,
न जागृत-सा, न विमूर्छित सा—इत्यादि।

'गुञ्जन' में 'रे' की पुनरुक्ति का मोह नहीं छोड सका।

यथा—'तप रे मधुर-मधुर मन' —इत्यादि।

'सा' से, जो मेरी वाणी का सम्वादी स्वर एकदम 'रे' हो गया, यह उन्नति का क्रम संगीत-प्रेमी पाठको को खटकेगा नहीं, ऐसा मुझे विश्वास है।"

—पंत ('गुञ्जन' का 'विज्ञापन')

छायावादी कविता युवको की सृष्टि थी, अत उसमें शब्द, चित्र ओर कल्पना का विशेष मोह था। पत जी में यह मोह शायद सबसे अधिक

शब्द साधना

है। 'अरथ अमित अरु आखर थोरे' वाला सिद्धान्त पत जी का नही है। शब्दो के प्रयोग में पत जी ने कही कजूसी नही की है। पत जी के काव्य में एक भाव के अनेक पर्याय-वाची शब्द ओर एक शब्द के अनेक विशेषण एक ही स्थान पर मिलेंगे। वस्तुत पत जी मे विषय की वैसी विशदता नही है, जैसा शब्द-शिल्प। उनमें अर्थ सगीत उतना नही है, जितना शब्द-सगीत। हिन्दी की शब्द-सम्पत्ति ओर शक्ति बढाने का श्रेय बहुत कुछ पत ओर निराला को है।

उनके काव्य में ऐसे स्थल भी मिलेंगे जहाँ शब्दा का जमघट-सा लगा होगा।

वितरती गृह-बन मलय समीर
साँस, सुधि, स्वप्न, सुरभि, सुख, गान,
मार केशर-शर मलय-समीर
हृदय हुलसित कर, पुलकित प्राण।

. .. ..

आज, तृण, छद, खग, मृग, पिक कीर,
कुसुम, कलि, व्रतति, विटप, सोच्छ्वास,
अखिल आकुल, उत्कलित, अधीर,
अवनि, जल, अनिल, अनल, आकाश!

—पृ० ५७–६०

—आदि ऐसे ही स्थल है जहाँ पत जी के वाणी-विलास अथवा शब्द-मोह को आसानी से देखा जा सकता है। पर ऐसे स्थल 'गुञ्जन' में कम है।

'गुञ्जन' के शब्द पत जी के तत्सम्बन्धी चिन्तन और साधना के द्योतक है। पत जी ने शब्दो के सम्बन्ध में पर्याप्त चिन्तन किया

है।[1] पत जी शब्दो की अन्तरात्मा का ज्ञान रखते है और उनके पारस्परिक भेद से सुपरिचित है।[2] फिर पत जी ने शब्दो की भावना की है। कविता

शब्द-चयन और शब्द-स्थापना

रचते समय पत जी एक भाव की अनेक पक्तियाँ लिख जाते है और फिर उनमे सर्वोत्तम पक्ति को अलग रखकर शेष को काट देते है। अत पत जी का शब्द-चयन उपयुक्त और उनका शब्द-स्थापन मार्मिक है।

---

१ 'प्रत्येक शब्द एक सकेतमात्र, इस विश्वव्यापी सगीत की अस्फुट झङ्कार-मात्र है। जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित है, ऋणानुबन्ध ह, उसी प्रकार शब्द भी, ये सब एक ही विराट् परिवार के प्राणी है। इनका आपस का सम्बन्ध, सहानुभूति, अनुराग-विराग जान लेना, कहाँ कब एक की साडी का छोर उडकर दूसरे का हृदय रोमाञ्चित कर देता, कैसे एक की ईर्ष्या अथवा क्रोध दूसरे का विनाश करता, कैसे फिर दूसरा बदल लेता, कैसे ये भले लगते, बिछुडते, कैसे जन्मोत्सव मनाते तथा एक दूसरे की मृत्यु से शोकाकुल होते,—इनकी पारस्परिक प्रीति-मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है? प्रत्येक शब्द एक एक कविता है, लक्ष और मल-द्वीप की तरह कविता भी अपने बनानेवाले शब्दो की कविता को खा खाकर बनती है।'—पत, पल्लव की भूमिका, पृ० १८।

२ 'भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द, प्राय, सङ्गीत-भेद के कारण, एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपो को प्रगट करते है। जैसे, 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भृकुटि' से कटाक्ष की चचलता, 'भौहो' से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय मे अनुभव होता है। ऐसे ही 'हिलोर' मे उठान, 'लहर' मे सलिल के वक्ष स्थल की कोमल-कम्पन, 'तरङ्ग' मे लहरो के समूह का एक दूसरे को धकेलना, उठकर गिर पडना, 'बढो-बढो' कहने का शब्द मिलता है, 'वीचि' से जैसे किरणो मे चमकती, हवा के पलने मे हौले-हौले झूलती हुई हँसमुख लहरियो का, 'ऊर्म्मि' से मधुर मुखरित हिलोरो का, हिल्लोल-कल्लोल से ऊँची-ऊँची बाँहे उठाती हुई उत्पातपूर्ण तरगो का आभास मिलता है।' —पत, पल्लव की भूमिका, पृ० १९।

अपने मधु में लिपटा पर
कर सकता मधुप न गुंजन,
करुण से भारी अन्तर
खो देता जीवन-कम्पन ।

—पृ० २०

यहाँ मधुप शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है। मधुप एक भोगी अथवा विलासी व्यक्ति का प्रतीक बन कर आया है। यदि मधुप की जगह मधुकर शब्द प्रयुक्त होता तो उतनी व्यजना नही आती क्योकि मधुप में भोग की, मधुपायी होने की भावना अनजान छिपी है ओर मधुकर में सग्रही बनने की, मधु-सचय करने की। शब्द-स्थापन भी कम कलापूर्ण नही है।

आते कैसे सूने पल
जीवन में ये सूने पल ?
जब लगता सब विश्रृखल,
तृण, तरु, पृथ्वी, नभ-मण्डल ।

—पृ० १३

अतिम पक्ति में शब्दो के क्रम की ऐसी व्यवस्था है कि भाव छोटे पदार्थ (तृण) से क्रमश बडे पदार्थ (तरु→पृथ्वी→नभ–मडल) की ओर बढता हुआ अतिव्यापक होकर मन पर छा जाता है।

देखू सबके उर की डाली—
किसने रे क्या क्या चुने फूल
जग के छवि-उपवन से अकूल ?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम, शूल !

—पृ० १७

यहाँ भी अतिम पक्ति में शब्दो के व्यवस्थित क्रम के कारण फूल के आदि-अत (कली—शूल) के साथ मानव-जीवन के क्रमिक-विकास का [कली (शैशव का आशाभरा दुलार)→किसलय (तरुणाई का पूर्वराग)

→कुसुम (यौवन का सुख-पराग)→शूल (जरा की निराशा)] सम्पूर्ण इतिहास उतर आया है।

वैसे, जिस तरह 'रे' केवल सगीत के लिए आया है उसीतरह

रूढि-प्रयोग

'चिर' और 'नव' शब्द भी श्रुति-मधुरता के हेतु ही बहुप्रयुक्त हुए हैं। पत जी की भाषा में इनका प्रयोग रूढि-सा हो गया है और प्रत्येक स्थान पर इनसे विशिष्ट अर्थ निकालना कठिन है।

पत जी की पद-योजना में बडा बल है। शब्दो की पारस्परिक

पद-योजना

मैत्री और द्वेष का उन्हें पर्याप्त ज्ञान है, अत शब्दो के सयोग मात्र से वे इच्छित वातावरण सृजित कर लेते हैं।

खग-कूजन भी हो रहा लीन,
निर्जन गोपथ अब धूलि-हीन,

—पृ० ८४

यहाँ 'खग-कूजन' और 'निर्जन गोपथ' के प्रयोगद्वारा सध्या के नीरव-निजन वातावरण को वडे लाघव के साथ उपस्थित किया गया है।

यदि पत जी के वर्ण-चयन मे कालिदास की और शब्द एव चित्र में शेली की अनुरूपता है तो पद-योजना में रवीन्द्र की। कही-कही तो उनके पद अर्थ अथवा भाव की ऐसी चरमाभिव्यक्ति करते हैं कि उनकी सृष्टि-प्रतिमा पर मुग्ध-मौन रह जाना पडता है।

खोल कलियो ने उर के द्वार
दे दिया उसको छबि का देश,
बजा भौंरे ने मधु के तार
कह दिये भेद भरे सदेश,

—पृ० ७३

रेखाकित पदो में अपेक्षित भाव की कैसी व्याप्ति है!

चित्र-साधना

पंत जी की भाषा चित्र-भाषा है। चित्रमयता और संगीत उनकी भाषा के सबसे बड़े गुण हैं। सिद्धांत में भी वे कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता स्वीकार करते हैं।१ अत पंत जी में शब्द के साथ चित्र का भी मोह है।

शब्द-चित्र

वस्तुत प्रत्येक शब्द उनके लिए एक चित्र है और प्रत्येक भाव एक आकार। पंत जी के शब्द-चित्र उन के पूर्ण चित्रों की अपेक्षा अधिक सुन्दर बन पड़े हैं।

अरे वह प्रथम-मिलन अज्ञात!
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित-गात,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप
जडितपद, नमित-पलक-दृग-पात,
पास जब आ न सकोगी, प्राण!

—पृ० ४३

रेखांकित शब्द-चित्र 'भावी पत्नी' के प्रथम-मिलन की प्रत्येक भाव-भंगिमा, गति, मुद्रा, सिहरन-पुलकन का सफल-मोहक आकार दे रहे हैं।

चित्रमय विशेषण

इन शब्द-चित्रों के आधार हैं चित्र-ध्वनिमय विशेषण। पंत की भाषा में ऐसे चित्र-ध्वनिमय विशेषणों की संख्या अनगिनत है।

अधर मर्मरयुत, पुलकित-अंग,
चूमती चल-पद चपल-तरंग,

---

१. कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर-लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झङ्कार में चित्र और चित्र में झङ्कार हो।

—पंत, पल्लव की भूमिका, पृ० २०।

चटकती कलियाँ पा भ्रू-भग,
—पृ० ७८

अधर के लिए 'मर्मस्पृत', अग के लिए 'पुलकित', पद के लिए 'चल' और भ्रू के लिए 'भग' जैसे उपयुक्त विशेषणो के प्रयोग ने ही उपरोक्त पक्तियो मे अपेक्षित चित्र और गति की छवि लाई है।

चित्र तथा भाव-स्वर-साम्य के लिए पत जी ने व्याकरण की कडियाँ तोडी है और पुल्लिग शब्दो का स्त्रीलिंग प्रयोग किया है क्योकि उन्हें कोमल चित्र और मधुर स्वर ही अधिक भाते है।[1]

लिग-परिवर्तन उनकी भाषा में प्रभात, क्षण, बन, मधु, बान, हार, सौरभ, गजन, गुञ्जन इत्यादि अनेकानेक स्थानो मे स्त्रीलिग बनकर, आए है क्योकि पुल्लिग रूपो मे इन शब्दो के अपेक्षित चित्र उनके सामने नही आते।[1]

---

१ मैने अपनी रचनाओ में, कारणवश व्याकरण की लोहे की कडियाँ तोडी है, यहाँ कुछ उसके विषय में भी लिख देना उचित समझता हूँ। मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दो को स्त्री-लिङ्ग मानना अधिक उपयुक्त लगता है। जो शब्द केवल अकारान्त-इकारान्त के अनुसार ही पुल्लिग अथवा स्त्रीलिग हो गए है, और उनमें लिग के अथ के साथ सामञ्जस्य नही मिलता, उन शब्दो का ठीक ठीक चित्र ही आँखो के सामने नही उतरता और कविता में उनका प्रयोग करते समय कल्पना कुण्ठित-सी हो जाती है। वास्तव में जो शब्द स्वस्थ तथा परिपूर्ण क्षणो में बने हुए होते है उनमें भाव और स्वर का सामञ्जस्य मिलता है, और कविता में ऐसे ही शब्दो की आवश्यकता भी पडती है। 'प्रभात' और प्रभात के पर्यायवाची शब्दो का चित्र मेरे सामने स्त्रीलिङ्ग में ही आता है, चेप्टा करने पर भी मै कविता में उनका प्रयोग पुल्लिग मे नही कर सकता। 'प्रभात' आदि को पुल्लिग मान लेने पर मेरे सामने प्रभात का सारा जादू, स्वर्ण, श्री, सौरभ, मुकुमारता आदि नष्ट हो जाते है, उनका चित्र नही उतरता।

—पत, पल्लव का विज्ञापन पृ० ख-ग।

आज सोये खग को अज्ञात
स्वप्न में चौंका गई प्रभात,
—पृ० ७४

जीवन की अश्रु-नयन क्षण
—पृ० ९१

वह फूली बेला की वन
—पृ० ८८

कुसुमो की ही मधु प्रियतर,
—पृ० ७२

नवेली बेला उर की हार
—पृ० ५८

अँगुलियाँ मदन बान की बान
—पृ० ५८

अपने उर की सौरभ से
—पृ० ३१

करुणार्द्र विश्व की गर्जन
—पृ० २२

यह मेरे प्राणो की उन्मन गुञ्जन मात्र है।
—विज्ञापन

यह ठीक है कि हिन्दी में लिंग का निर्धारण अभी तक पूर्ण वैज्ञानिक नही है, पर जबतक इसकी कोई सर्वमान्य व्यवस्था नही होती तब तक इस प्रकार के व्याकरण-स्वातन्त्र्य को श्लाघ्य नही कहा जा सकता। हमारा व्याकरण अपवादो की भरमार के कारण योही पेंचीदा और भयावह है, इस प्रकार की अराजकता से तो उसकी कठिनाई और बढ जायेगी। फिर इस प्रकार के प्रयोग से कही-कही अर्थ में अनर्थ के उतर आने का भी डर बना रहता है। पंत जी की ही एक पंक्ति को लीजिए—

नवेली वेला उर की हार

यहाँ 'हार' का अपेक्षित अर्थ माला है, पर उसका प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में हुआ है जिसका अर्थ पराजय है। ये दोनो अथ मिलकर पाठक के मन के भाव को छिन्न-भिन्न कर देते है।

संगीत-साधना पंत जी के लिए चित्र और संगीत परस्पर सापेक्ष है। उनके लिए 'भाषा संसार का नादमय-चित्र है, ध्वनिमय—स्वरूप है', वह 'झङ्कार में चित्र' और 'चित्र में झङ्कार' है। अत पंत जी में संगीत की बडी ममता है। संगीत के लिए कुछेक वर्णों (श-स, ण-न, ल, व) का बहुलता के साथ प्रयोग

शब्द-निर्माण और 'रे' की पुनरुक्ति तो की ही है, उच्चारण सौंदर्य और श्रुतिसुगमता के लिए कुछेक शब्दो का स्वतंत्र निर्माण भी किया है, जैसे 'प्रि' (प्रिय), 'अनिवच' (अनिवचनीय), 'सिंगार' (हरसिंगार) इत्यादि।

प्रिय प्रिय विषाद रे इसका,

प्रिय प्रि' आह्लाद रे इसका।

—पृ० १८

वह है, वह नही, अनिवच,

—पृ० ९१

कुसुमित सुभग' सिंगार

—पृ० ९७

द्विरुक्तियो का प्रयोग संगीत के स्वर-साम्य के हेतु पंत जी की भाषा में द्विरुक्तियो का प्रयोग भी खूब हुआ है—

बन बन, उपवन—

छाया उन्मन-उन्मन गुञ्जन!

—पृ० १

तप रे मधुर मधुर मन!

—पृ० ११

तप रे विधुर-विधुर मन !

—पृ० ११

हो उठता चंचल, चंचल ?

बज उठते प्रतिपल, प्रतिपल !

क्यों जाता पिघल-पिघल गल !

—पृ० १२

अनुकरणात्मक शब्द

पंत जी ने भाषा को नादमय-चित्र कहा है और नादमय चित्र के लिए अनुकरणात्मक शब्दों का, ऐसे शब्दों का, जिनके उच्चारण मात्र से अर्थ की गति झंकृत होजाय, प्रयोग अपेक्षित है । कविवर पोप ने कहा था कि कविता की भाषा के लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि उसमें श्रुति-कठोरता न हो वरन यह भी कि उसमें ऐसे शब्द हों जिनके नाद से अर्थ ध्वनित हो जाय । पंत और पोप में विचारैक्य है, अतः पंत जी की भाषा में अनुकरणात्मक शब्द भी पर्याप्त संख्या में मिलेंगे । निम्नलिखित पंक्तियाँ नादमय चित्र का एक सुन्दर-सुभग स्वरूप उपस्थित करती हैं—

सिहर लहर, मर्मर कर तरुवर,

तपक तड़ित अज्ञात,

—पृ० ८६

इस नादमय चित्र के कल्पक 'सिहर', 'मर्मर' और 'तपक' जैसे अनुकरणात्मक शब्द ही हैं ।

इसी प्रकार—

मृदु मन्द मन्द, मन्थर मन्थर, लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर

तिर रही, खोल पालों के पर ।

—पृ० १०२

—आदि पक्तियो में 'मृदु मन्द मन्द, मन्थर मन्थर' जैसे गतिविषयक शब्दो से मधुर वीचियो पर तिरनेवाली छोटी चपला की सम्पूर्ण तसवीर खिच आती है, तो—

रे फैल-फैल फेनिल हिलोल
उठती हिलोल पर लोल-लोल

जीवन का जलनिधि डोल-डोल
कल-कल छल-छल करता किलोल ।
—पृ० ७७

—आदि वाक्यो मे कतिपय अनुकरणात्मक पुनरुक्त शब्दो (फैल-फैल, कल-कल, छल-छल) के सयोग से जल की प्रवाह-क्षिप्रता और वात्याचक्र ध्वनित और मूर्त्त हुए हैं ।

अनुप्रास-प्रयोग

पत जी की भाषा में अनुप्रास का भी मोह है । अन्त्यानुप्रास के लिए उन्होने कही-कही णकारान्त शब्दो का नकारान्त कर दिया है।१ उनकी इस अनुप्रास-प्रियता का कारण भी सगीतप्रियता ही है ।

अलकृति

पत जी ने सादी, इकहरी निराभरण भाषा भी लिखी है—

कलख किस नही सुहाता ?
कौन नही इसको अपनाता ?
—पृ० ६६

और सादगी में कवि की 'शब्द-लालित्यवाली भाषा' खुलती भी है—

---

१ कहीं-कही अन्त्यानुप्रास मिलाने के लिए आवश्यकतानुसार 'कण', 'गण', 'मरण' आदि णकारात्मक शब्दो को नकारात्मक कर दिया है । यथा—एक छवि के असख्य उडगन ।
—पत, पल्लव का विज्ञापन, पृ० घ ।

अधिक अरुण है आज सकाल—
चहक उठे जग-जग खग-बाल,
चाहो तो सुन लो जी खोल
कुछ भी आज न लूगी मोल ।

—पृ० ७६

पर ये छायावादी पत की भाषा के अपवाद-स्थल है। छायायुगीन पत की भाषा प्राय विशेषरूप से अलकृत रही है। वह पार्वतीय कवि की नागरिक भाषा है—पौर्वात्य-पाश्चात्य प्रसाधनालकारो से विन्यस्त। उस भाषा में शायद ही कोई सज्ञा विशेषण रहित और कोई रूप अलकारविहीन हो।

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलकार

—यह प्रगतिवादी पत की वाणी है, छायावादी पत की नही। छाया-काल में तो वे अलकार को भाषा की पुष्टि और राग की पूर्णता के आवश्यक उपादान मानते रहे है।[1] 'पल्लव से गजन तक मेरी भाषा में एक प्रकार के अलकार रहे है और वे अलकार भाषा-सगीत को प्रेरणा देनेवाले तथा भाव सौंदर्य की पुष्टि करनेवाले रहे है। बाद की रचनाओ में भाषा के अधिक बुद्धिगर्भित (एब्सट्रैक्ट) हो जाने के कारण मेरी अलकारिता

१ (अलकार) भाषा की पुष्टि के लिए, राग की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति है, पृथक् स्थितियो के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओ के भिन्न चित्र है। जैसे वाणी की झङ्कारें विशेष घटना से टकराकर फेनाकार हो गई हो, विशेष भावो के झोकें खाकर बाल-लहरियो, तरुण-तरगो में फूट गई हो, कल्पना के विशेष बहाव में पड आवर्त्तों में नृत्य करने लगी हो। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव है।

—पत, पल्लव की भूमिका, पृ० २२।

अभिव्यक्तिजनित हो गई है।'१ अब रूप-चित्र से विचार-चित्र अधिक प्रधान हो उठे है। अब रूपपूजन का स्थान भावपूजन ने ले लिया है—'रूप रूप बन जाय भाव स्वर, चित्र गीत झङ्कार मनोहर'। अब विचार ही अलङ्कार बन गये है, युग का भाव-तत्त्व अभिव्यंजना से अधिक काव्य-गौरव रखने लगा है।

वैसे 'गुञ्जन' में गिनाने को अनेकानेक अलंकार मिलेंगे। जैसे —

छेकानुप्रास—रुपहले, सुनहले आम्र-बौर

—पृ० १०

सागर संगम में है सुख

—पृ० १८

मेरे गानों के गाने

—पृ० १५

वृत्यानुप्रास—साधन भी इच्छा ही है

सम इच्छा ही रे साधन

—पृ० २८

(एक व्यंजन 'स' की अनेक बार आवृत्ति)

काँटों से कुटिल भरी हो।

—पृ० ३२

(एक व्यंजन 'क' की एकबार आवृत्ति)

हम कूल विलोक न पावें।

—पृ० ३१

(अनेक व्यंजनों 'क ल' की एकबार स्वरूपतः आवृत्ति)

यमक—तुम्हारे परस-परस के साथ

—पृ० १०८

(यहाँ १ परस—पारस, २ परस—स्पर्श)

---

१ पंत, 'आधुनिक कवि' का पर्यालोचन, पृ० ८—९।

श्लेष—रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम

—पृ० ६२

(तारा—१ तारिका, २ पचकन्या अर्थात् चिरकुमारिका)

वीप्सा—बन-बन, उपवन—

छाया उन्मन-उन्मन गुञ्जन

—पृ० १

पूर्णोपमा—बाल-रति-सी अनुपम, असमान

प्रिय, प्राणो की प्राण !

—पृ० २३९

लुप्तोपमा—मृगेक्षिणि ! इसमें खग अनजान।

(वाचकोपमेयलुप्ता)

—पृ० ४४

मालोपमा—नवल मधुऋतु-निकुज में प्रात

प्रथम-कलिका-सी अस्फुट गात,

नील नभ अत पुर में, तन्वि !

दूज की कला सदृश नवजात,

मधुरता, मृदुता-सी तुम प्राण !

—पृ० ४०

प्रतीप—झलकती, मेरी जीवन-स्वप्न ! प्रभात

तुम्हारी मुख-छबि-सी रुचिमान !

—पृ० ५३ (प्रथम प्रतीप)

रूपक (निरग)—मेरी जीवन-स्वप्न !

रूपक (साङ्ग)—प्रथम-यौवन मेरा मधुमास,

मुग्ध-उर मधुकर, तुम मधु, प्राण !

—पृ० ६५

रूपक (परम्परित)—जग के दुख-दैन्य-शयन पर

यह रुग्ना जीवन-बाला

रे कब से जाग रही, वह
आँसू की नीरव माला !

—पृ० ३४

उल्लेख—तुम मेरे मन के मानव,
मेरे गानों के गाने,
मेरे मानस के स्पन्दन
प्राणों के चिर पहचाने !
मेरे विमुग्ध-नयनों की
तुम कान्त-कनी हो उज्ज्वल
सुख की स्मिति की मृदु-रेखा
करुणा के आँसू कोमल

—पृ० ३५

स्मरण—दृगों में छा जाता सोल्लास
व्योमबाला का शरदाकाश,
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान,

—पृ० ४१

सन्देह—कल्पना हो, जाने परिमाण ?
प्रिय, प्राणों की प्राण !

—पृ० ४०

उत्प्रेक्षा—आज गृह-वन-उपवन के पास
लोटता राशि-राशि हिम-हास,
खिल उठी आँगन में अवदात
कुन्द कलियों की कोमल प्रात ।

—पृ० ४६

रूपकातिशयोक्ति—कर दिए पलक-प्राण गतिहीन,
लाज के जल की मीन !

—पृ० ६४

समासोक्ति---विजन-वन के ओ विहग कुमार !
आज घर-घर रे तेरे गान,
मधुर-मुखरित हो उठा अपार
जीर्ण-जग का विषण्ण उद्यान !

---पृ० ८१

अन्योक्ति---रिक्त होते जब जब तरु-वास
रूप धर तू नव नव तत्काल,
नित्य-नादित रखता सोल्लास
विश्व के अक्षय-वट की डाल ।

---पृ० ८३

विरोधाभास---निखिल छवि की छवि ! तुम छवि-हीन

---पृ० ७८

अन्योन्य---वह है, वह नहीं अनिर्वच,'
जग उसमें वह जग में लय,

---पृ० ९१

कल्पना तुममें एकाकार
कल्पना में तुम आठो याम
तुम्हारी छवि में प्रेम-अपार
प्रेम में छवि अभिराम,

---पृ० ६५

एकावली---आज बन में पिक, पिक में गान
विटप में कलि, कलि में सुविकास
कुसुम में रज, रज में मधु प्राण !
सलिल में लहर, लहर में लास !

---पृ० ६०

यथासंख्य---बरसो कुसुमों में मधु बन,
प्राणों में अमर प्रणय-घन,

स्मिति स्वप्न अधर-पलकों में
उर-अंगों में सुख-यौवन
—पृ० ५९

(अधर में स्मिति, पलकों में स्वप्न, उर में सुख और अंगों में यौवन)

परिसंख्या—देह में पुलक, उरों में भार,
भ्रुओं में भंग, दृगों में बाल,
अधर में अमृत, हृदय में प्यार
गिरा में लाज, प्रणय में मान।
—पृ० ६०

काव्यलिंग—आत्मा है सरिता के भी
जिससे सरिता है सरिता
जल-जल है लहर-लहर रे
गति-गति, सृति-सृति चिरभरिता
—पृ० १४

भाविक—सुमुखि, वह मधु-क्षण! वह मधु-बार!
धरोगी कर में कर सुकुमार!
निखिल जब नर-नारी संसार
मिलेगा नव-सुख से नव-बार,
अधर-उर से उर-अधर समान,
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण,
कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान,
प्रिय, प्राणों की प्राण!
—पृ० ६४

संसृष्टि—वितरती गृह-वन मलय-समीर
साँस, सुधि, स्वप्न, सुरभि, सुख, गान,
मार केशर-शर मलय-समीर

हृदय हुलसित कर, पुलकित प्राण ।

(वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, यमक)

गंगा के चल-जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
. है मूंद चुका अपने मृदु-दल ।
लहरों पर स्वर्ण-रेख सुन्दर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर ।

—पृ० ८४

(रूपक और उत्प्रेक्षा)

उपमा और वीप्सा की प्रधानता

पंत जी को शब्द-चित्र (Pen pictures) और संगीत विशेष प्रिय हैं, इसलिए उनकी भाषा में शृंखला और विरोध-मूलक अलंकारों की अपेक्षा सादृश्य, संकेत और ध्वनि-मूलक अलंकारों, विशेषतः उपमा और वीप्सा की प्रधानता है।[1] पर अलंकारों की गणना और भारतीय अलंकार-शास्त्र के आधार पर उनका मूल्यांकन विशेष महत्त्व नहीं रखते क्योंकि छायावादी काव्य का अभिप्रेत रूप-चित्रण था न कि अलंकार योजना। भारतीय अलंकार-शास्त्र की पूर्णता के विश्वासी छायावाद के तथा-कथित नवीन अलंकारों—मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय और ध्वनि-अलंकारों को रूपक और लक्षणा के भेद मात्र मान लेंगे, पर फिर भी छायावादी अभिव्यंजना के अनेक उपादान शेष रह जायँगे जिन्हें अलंकार-शास्त्र तक लाने में पर्याप्त कठिनाई होगी। महत्त्व की बात तो इतनी है कि पंत जी की भाषा चित्रित तथा अलंकृत है और उन्होंने अलंकारों का प्रयोग भाषा की पुष्टि, चित्र की अनुरूपता और राग की

---

१. 'भावी पत्नी के प्रति—' और 'रूपतारा तुम पूर्ण प्रकाम' आदि कविताओं में उपमा की झरी-सी लगी है। द्विरुक्तियों के रूप में वीप्सा अलंकार तो प्रायः सर्वत्र मिलेगा।

पूर्णता के लिए किया है, रूढि-अनुशीलन के हेतु नही। उन्होंने अलकारो

अलकारो का नवीन सौंदर्य

को नवीन दृष्टि से देखा है और अभिव्यजना की आधुनिक सरणी में उतार कर उन्हें नवीन भावगरिमा और शक्ति दी है। यहाँ उपमा ने गुण के सहारे रूप की सृष्टि की है—

मधुरता, मृदुता-सी तुम प्राण !

सरल शैशव-सी तुम साकार।

उत्प्रेक्षा के क्रम-विपर्यय से चित्र मनोरम, लाक्षणिक और अनुभूतिपूर्ण हो उठा है और उसमें एक विशेष प्रकार की स्पर्शशीलता आ गई है—

आज उन्मद मधु-प्रात
गगन के इन्दीवर से नील
झर रही स्वर्ण-मरन्द समान,
तुम्हारे शयन-शिथिल सरसिज उन्मील
छलकता ज्यो मदिरालस, प्राण !

—पृ० ८८

प्रतीक (यहाँ स्वर्ण) के सयोग से रूपक वाह्य सौंदर्य के साथ ही अन्तसौंदर्य (आध्यात्मिक प्रकाश) का अभिव्यजक हो उठा है—

अपने सजल-स्वर्ण से पावन,
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,

—पृ० ११

इस प्रकार अलकार पत जी की भाषा का बोझ नही, बल है। उनके चित्र और सगीत बहुत-कुछ इन अलकारो पर आवृत है।

रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम,
मृगेक्षिणि ! सार्थक नाम।

—पृ० ६२

यहाँ कवि की नारी-भावना की व्यापकता, उसके रूप-विस्तार और समन्वित कला का श्रेय उस श्लेष (तारा) का है जो अपने भीतर धरती और स्वर्ग के तत्त्वो को लिए बैठा है।

एक दुबल-स्थल

हाँ, कहीं-कहीं चित्रों की ऐसी भीड़ लगी रहती है जिसमें कविता का केंद्रस्थित भाव अपने विकास का मार्ग खो बैठता है और कहीं-कहीं अलकारों का ऐसा मेला लगा होता है जिसके पारस्परिक प्रदर्शन और प्रतियोगिता में प्रधान अलकार की प्रभविष्णुता नष्ट होने लगती है तथा कोई भाव मन पर ठीक-ठीक अकित नहीं होता (देखिए पृ० १८३–८४)।

शैली-सौंदर्य के अन्य साधन

कोमल वर्णों, अनुकरणात्मक शब्दों और ध्वनि-सकेत-सादृश्यमूलक अलकारों के अतिरिक्त पत जी ने शैली-सौन्दर्य के जिन अन्य साधनों का उपयोग किया है उनमें मुख्य हैं आश्चर्यवाक्य (Epigrams), सतुलित वाक्य (Balanced sentences) और प्रसग-गर्भित अवतरण।

आश्चर्य वाक्य—तेरी मधुर मुक्ति ही बधन

—पृ० ९१

जाता जीवन से जीवन

—पृ० १४

जग पीड़ित है अति-दुख से,
जग पीड़ित रे अति-सुख से,

—पृ० १६

दुख के तम को खा-खाकर
भरती प्रकाश से वह मन।

—पृ० २०

सतुलित वाक्य—सागर की लहर लहर में
है हास स्वर्ण किरणों का
सागर के अन्तस्तल में,
अवसाद अवाक् कणों का!

—पृ० १८

प्रसग-गर्भित अवतरण---लहरो के घूघट से झुक झुक
दशमी का शशि निज निर्यक-मुख
दिख जाता, मुग्धा-सा रुक-रुक ।

---पृ० १०३

विश्व के अक्षय-वट की डाल

---पृ० ८३

लगा अक से तडित-भीत शशि---
मृग शिशु को सुकुमार,

---पृ० ९५

नाग-दन्त-नत इन्द्रधनुष-पुल
करती तुम नित पार

---पृ० ०५

डाल अँगूठा शिशु के मुह में
देती मधुस्तन-दान

---पृ० ९३

पन जी ने कविता को 'परिपूर्ण क्षणो की वाणी' कहा है जिसमें भाव भाषा का स्वरैक्य होना है । पत जी के भाव सुकुमार

सिंहावलोकन हैं, अत उनकी भाषा कोमल है । उसमें लाक्षणिकता, मूर्तिमत्ता और सगीत है । यह काव्य-भाषा अलकृत है पर सामान्यत बोझिल नही । मुहावरो के अभाव में भी वह साफ है---

चल-सरित-पुलिन पर वह विकसी ,
उर के सौरभ से सहज-बसी,
सरला प्रात ही तो विहँसी,
रे कूद सलिल में गई चली !

---पृ० ३७

आज रहने दो यह गृह-काज,
प्राण ! रहने दो यह गृह-काज !

—पृ० ५१

मुहावरे

वैसे ढूढने पर कुछेक मुहावरे भी मिल जायंगे और बडे साफ—

आई लहरी चुम्बन करने,
अधरो पर मधुर अधर धरने,
फेनिल मोती से मुह भरने

—पृ० ३८

वह छबि की छुई मुई-सी

—पृ० ८९

न गुरु से सीखे वेद-पुराण

—पृ० १०५

न पिक-प्रतिमा पर कर अभिमान

—पृ० १०५

हँसते है विद्वान्
गीत खग तुझ पर सब विद्वान् !

—पृ० १०५

कही २ तो उन्होने अलकारो की तरह मुहावरो को भी सुसस्कृतकर ऐसा चमका दिया है कि उनके सामने पुराने मुहावरे हतप्रभ-से दीखने लगते है ।

फूटता नभ में स्वर्ण-विहान

—पृ० १०६

सुरुचिपूण ढग से सशोधित उपरोक्त मुहावरे के सामने उसका पुराना रूप 'पौ-फटना' कितना हीन और ग्राम्य लगता है ।

पर मुहावरे पत जी की भाषा में विशेष महत्त्व नही रखते । यह भाव और भाषा का स्वरैक्य, उपयुक्त शब्दो का चयन तथा उनकी

उचित स्थानापन्नता है जिनके कारण पंत जी की भाषा में सफाई, व्यापकता और गति आती है।

अब उथला सरिता का प्रवाह, लग्गी से ले-ले सहज थाह
हम बढ़ घाट को सहोत्साह।
—पृ० १०८

यहाँ उथला, लग्गी, थाह, घाट जैसे उपयुक्त शब्दों का यथास्थान प्रयोग हुआ है। इसीसे यह चित्र इतना साफ है। 'लग्गी' का प्रयोग ऐसे स्थान पर हुआ है कि स्वर उसपर एक क्षण के लिए रुक जाता है और ऐसा लगता है मानो सचमुच लग्गी पानी में सरक रही है।

सूक्तियाँ — फिर कुछ सूक्तियाँ भी हैं जो मुहावरों के अभाव को पूरा करने की चेष्टा करती हैं—

है लेन-देन ही जग-जीवन
—पृ० ३८

सागर-संगम में है सुख,
जीवन की गति में भी लय
—पृ० १८

सुख-दुख न कोई सका भूल
—पृ० १७

जग-जीवन में है सुख दुख
सुख-दुख में है जग-जीवन
—पृ० १८

हाँ, पंत जी की सूक्तियाँ उतनी पैनी नहीं है जितनी प्रेमचंद और प्रसाद जी की।[१]

---

१ देखिए—'प्रसाद और उनके नाटक' (प्रो० केसरी कुमार)

पंत जी की भाषा में कहीं-कहीं चलचित्र की त्वरा भरनेवाली तथा आकस्मिक परिवर्तन का तत्क्षण चित्रण करनेवाली नाटकीयता भी मिलती है। 'नौका-विहार', 'एक तारा' और 'चांदनी' इसके प्रमाण हैं।

नाटकीयता

सिकता की सस्मित-सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो पालें चढ़ीं, उठा लंगर।
मृदु मन्द मन्द, मन्थर मन्थर, लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर
तिर रही, खोल पालों के पर

—पृ० १०२ (नौका-विहार)

गुंजित अलि-सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन-अंधकार,
हल्का एकाकी व्यथा-भार!
जगमग जगमग नभ का आँगन, लद गया कुन्द कलियों से घन,
वह आत्मा और यह जग-दर्शन!

—पृ० ८६ (एक तारा)

पंत जी की भाषा में दोष हैं, पर कम। अलंकार पंत जी की भाषा की शक्ति है किन्तु जहाँ इनका आधिक्य हो जाता है वहाँ अलंकृति गुण न होकर दोष बन जाती है क्योंकि इसके कारण केन्द्रस्थित भाव गतिहीन हो जाता है और चित्र अपनी रूपात्मकता खोने लगता है।

दोष

व्याकरण सम्बन्धी स्वातंत्र्य के कारण एक-आध जगह भाव-सम्बन्धी अस्तव्यस्तता भी आगई है—**नवेली बेला उर की हार।**

कहीं-कहीं अस्थान प्रयोग दोष भी आ गया है—

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन।

यहाँ 'ही' का प्रयोग बंधन के बाद होना चाहिए था, न कि मुक्ति के बाद क्योंकि कवि का उद्देश्य यह कहना है कि बंधन ही तेरी मुक्ति है, न कि मुक्ति ही तेरा बंधन है जैसा कि ऊपर के शब्द-क्रम से ध्वनित होता है।

कहीं-कहीं भाषा किञ्चित शिथिल भी पड़ गई है—

कितने प्राणों के गाने
ठहरे हैं तुमको मन में !

—पृ० ४५

कई जगह 'चिर', 'नव' और 'रे' का प्रयोग निरर्थक हुआ है।

पर पंत जी की भाषा के गुणों के सामने उसके दोष सर्वथा नगण्य हैं।

गुञ्जन का स्थान

'गुञ्जन' पंत जी की भावधारा के साथ ही उनकी भाषा-साधना के विकास का द्योतक है। 'गुञ्जन' की भाषा-वीणा के तारों पर सधे हाथ पड़े हैं। पंत जी के शब्दों में 'गुञ्जन के भाषा संगीत में भी एक सुघरता, मधुरता और श्लक्ष्णता आ गई है, जो पल्लव में नहीं मिलती। गुंजन के संगीत में एकता है, पल्लव के स्वरों में बहुलता। पल्लव की भाषा दृश्य जगत के रूप रंग में मांसल और पल्लवित है। गुंजन की भाषा भाव और कल्पना के सूक्ष्म सौंदर्य से गुंजित।[1]

---

१ पंत, 'आधुनिक कवि' का पर्यालोचन, पृ० ५

कला

व्यवहार में कला कलाकार की एक सृष्टि है जो उसकी दृष्टि में वस्तु जगत् से श्रेष्ठ है । स्वभावत कलाकार कल्पक होता है । कल्पना उसकी प्रतिभा का वाहन है जो उसे मात से अनन्त, मर्त्य से 'रसोवेंस' के लोक तक ले जाती है । कल्पना उसके मनोलोक की दीप्ति है जिसके प्रकाश में वह सत्य का आकलन करता है । कल्पना उसकी मौलिकता है जो ब्रह्मा और विश्वामित्र की सृष्टियो से भव्यतर ससार का निर्माण करती है—एक ऐसे लोक की, जिसका सत्य, विज्ञान के सत्य से भी वृहत्तर होता है, क्योकि वहा काल के वाद का प्रतिवाद नही है, जिसका शिव शिवशम्भू से भी महत्तर है, क्योकि वह विरूपाक्ष नही है और जिसका सौन्दर्य रतिरानी से भी मोहक है क्योकि उसकी दहली पर पञ्चशर के प्रहरी नही है । कल्पना के अभाव में वह परकटे पछी की भाँति मालिक के दानो पर पलनेवाला—जूठन की जूठन का अधिकारी बन जाता है—पथभ्रष्ट, अभिशप्त, गधर्व- लोक से छूटा हुआ किन्नर । कल्पना कला का पाञ्चजन्य है जो वस्तु-स्थिति के शृङ्ग पर उसकी विजय का उद्घोष करता है । मैथ्यू आर्नल्ड के शब्दो में कल्पना ही कविता का सर्वस्व है, कल्पना को छोडकर जो कुछ है वह भ्रममात्र है ।

कला एक सृष्टि

पर महज कल्पना का कोई अर्थ नही । करतार की सापेक्ष सृष्टि की कल्पना भी निरपेक्ष नही होती । और, मनीषी स्वयभू की कल्पना तो निरपेक्ष ही नही, निरुद्देश्य भी नही होती । निष्प्रयोजन वह नही बोलता । वैसे कल्पना तो पागल भी करता है और उसके बिगडे दिमाग की कल्पनाओ में भी उसके लिए खुशियाँ होती है । पर उसकी कल्पना भ्राति है—निराधार और कोरी वैयक्तिक । कलाकार की

कला में कल्पना और अनुभूति

कल्पना भ्रांति नहीं, प्रज्ञा है। वह माया नहीं, योगमाया है। 'विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो दृष्टि है, वही कविता में कल्पना है।' शेक्सपियर ने पागल, प्रेमी और कवि को एकही कोटि में बैठा दिया था। पर भ्रांत की कल्पना निराधार होती है। वह अमर-बेलि की तरह शून्य में उगती है और जीवन तक आते-आते सूख जाती है। कल्पक की कल्पना उद्भिज की भाँति धरती में उगती है और ऊपर के आलोक एवं वायु में फैलती है। मनुष्य के भीतर परम्परा से प्राप्त असंख्य संस्कार उपनिविष्ट होते हैं जो उसकी मनोदशाओं पर अज्ञात रूप से शासन करते रहते हैं। उसके मनोवेगों का नियंत्रण करते हैं और उसकी भावनाओं-कल्पनाओं को एक विशेष दिशा की ओर प्रेरित करते हैं। मनोविज्ञान के आचार्य फ्रायड ने शायद इसे ही उपचेतन का सत्य कहा है। हमारा अभाव उपचेतन से अपना अभिप्रेत-अभीप्सित माँगता है। उपचेतन कल्पना के पास जाता है। कल्पना कला को बुलाती है। कला अशोक की छाया तले खड़ी होकर पिपासुओं, मुमक्षुओं को उपकृत करती है। कला शेष की पूर्ति है। इसलिए जब अरस्तू ने कला को अनुकरण कहा तो मीमांसकों ने उसका अर्थ अनुकृति लगाया।

कवि को पूर्वोत्तर क्षितिज प्रदेश का अधिवासी कहा गया है। उसे पूर्ववर्ती कवियों का फल और उत्तरवर्ती कवियों का फल-स्वरूप कहा गया है। वह स्रष्टाओं की सृष्टि और सृष्टियों का स्रष्टा है। काल उसकी कला के स्वरूप का निर्धारण करता है और उसकी कला-सृष्टि से विकीर्ण होनेवाले आलोक में युग नयी राह देखता है। धरती का पानी आकाश में बादल बनकर छाता है और फिर बरस पड़ता है धरती को उर्वर करने के लिए। इसलिए उसकी कल्पना निराधार तो होती ही नहीं, सर्वथा नवीन भी नहीं होती। इलियट ने कोरी नवीनता की बुराई में जो तर्क उपस्थित किये हैं उनमें पर्याप्त बल है। कला में मौलिकता का अर्थ सर्वथा नवीनता नहीं, विकास है। फिर विराट् की अवतारणा करना कठिन नहीं उसे प्राणवान् बनाना दुष्कर है।

प्राण-प्रतिष्ठा के बिना देवता और पत्थर में क्या अन्तर है? और वह अनुभूति ही है जो कल्पना को प्राणवती बनाती है। यह अनुभूति ही है जो कल्पना को सत्य का परिधान देती है। यह हृदय का 'जाग्जरस' है जो कल्पना को अमरता का घूंट पिलाता है।

कला और परम्परा

यह कल्पना अपने आप में पूरी भी नहीं होती। वास्तुकलाविद भवन-निर्माण के पूर्व भवन की रूप-रेखा अपनी कल्पना के द्वारा प्रस्तुत करता है पर निर्माण तो उसे प्राप्त उपादानों से ही—ईंट, चूना, लोहा, लकड़ी आदि से ही—करना पड़ता है। जिस इमारत में परीक्षित सामग्रियों का उपयोग नहीं होता उसमें लोगों की दृढ़ निष्ठा नहीं होती, उसके ठहराव में विश्वास नहीं होता। कला भी एक सृष्टि है। कालगत अभाव उसकी रचना की प्रेरणा है। कल्पना उसकी रूपाकृति गढ़ती है, अनुभूति नींव डालती है और परम्परा उसे निर्माण के उपादान देती है। संसार के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों, चित्रों एवं मूर्तियों में अतीत की सामग्रियों का सर्वाधिक उपयोग हुआ है।

कला का स्वरूप

अवतार कला का अपूर्व उदाहरण है। अवतार के रूप-सौंदर्य की कल्पना की कोई इयत्ता है? अवतार के सत्य से बड़ा सत्य भी क्या होगा? फिर अवतार निष्प्रोजन नहीं होता। उसका उद्देश्य 'स्व' के कलन के साथ मंगल का विधान है।

पंत जी की 'सौंदर्य-दर्शन-कला'

पंत जी को कविता करने की आदि प्रेरणा प्रकृति से मिली जिसका श्रेय उनकी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश और कालिदास के अमर प्रकृति-काव्य 'मेघदूत' को है। तब प्रकृति के आकर्षण ने, उनके भीतर, एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर उनकी चेतना को तन्मय कर दिया था[1] और अपने प्रति एक नीरव संमोहन का आश्चर्य उत्पन्न करके उन्हें सौंदर्य-सृष्टि

---

१ ('आधुनिक कवि' (पंत), पृ० १-२)

की प्रेरणा दी थी। फिर पत जी ने काव्य की स्वरसाधना एक ऐसे रोमाटिक काल में की जब सौदयभावना सादर्योपासना बन रही थी। अत पत जी की कला आरम्भ से ही 'सोदर्य-दशन-कला' रही है। उनके काव्य के दो मुख्य आलम्बन हे—प्रकृति और नारी। उनके कलाकार के उपचेतन ने काव्य के इन दो आलम्बनो में अपनी सोदर्यबुभुक्षा की परितृप्ति ढूढी है। प्रकृति के सुन्दर पक्ष ने ही उन्हें अधिक लुभाया है, 'वह्नि, बाढ, उल्का, झझा' के उग्र- भीषण रूपो न नही। पत जी की नारी भी रवीन्द्रनाथ की प्रेम-साधना करनेवाली कुरूपा अथवा 'नारीर उक्ति' वाली शीर्णा नही, 'अध-खिले अगो का मधुमास लुटानवाली, अकलुष दीपशिखा-सी जलनेवाली 'निखिल-छवि की छबि' है। पत जी के काव्य के समग्र उपादान सुन्दर है—उनमें वर्णसौदर्य, शब्द-लालित्य, चित्र-झकार, और छद-अलकार-सौष्ठव का मोह है। और, पत जी की इस 'सौदर्य-दशन-कला' में सूक्ष्म-दर्शिता और सक्रिय चेतना है जिसे हम वर्णों के उच्चारण-सौदर्य, शब्दो के सस्थापन, चित्रो की वर्णविपुलता, सगीत के अन्त राग और छन्दो की यति-गति में देखते है।

वह नभ के स्नेह-श्रवण में
दिशि की गोपन-सम्भाषण,
नयनो के मौन-मिलन में
प्राणो की मधुर समर्पण।

—पृ० ९०

इन पक्तियो का उच्चारण-सौदर्य अथवा सगीत 'ण' वर्ण पर टिका है आर खूब टिका है। इसी प्रकार—

आज रहने दो यह गृह-काज,
प्राण रहने दो यह गृह-काज !

—पृ० ५१

—यहाँ मधुर वातावरण के निर्दोष आकषण का श्रेय कवि के 'काज' और 'प्राण' जैसे शब्द-प्रयोग को है। यदि इनकी जगह इनके पर्यायवाची रूप लिख दिये जायें तो नवदम्पति की सारी भावप्रवणता नष्ट हो जाय। 'काज'

में शब्द माधुरी ही नही, अर्थ माधुरी भी है। पतजी की दृष्टि सौंदय-दृष्टि है। उनके लिए—

सुन्दर मृदु-मृदु रज का तन,
चिर सुन्दर सुख-दुख का मन

चिर सुन्दर जन्म-मरण रे

सुन्दर पुराण-नूतन रे

•

सुन्दर से नित सुन्दरतर,
सुन्दरतर से सुन्दरतम
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर सुन्दर जग जीवन !

यही सौदय-दृष्टि पत जी की प्रसन्नता, आशा और विश्व-प्रेम का आधार है। वैसे सौदय तो शेली की काव्य-प्रेरणा भी था, पर शेली और पत में अतर है। शेली की सौदर्यलिप्सा अतृप्त है, पत की, कीटस की तरह, तृप्त। इसीलिए पत की कला पर मादकता के साथ तृप्ति की शाति भी छायी रहती है और यही शाति उनके काव्य की वासना को परिमार्जितकर उसे स्वाभाविक श्रृगार का मोहक रूप दे देती है।

प्रकृति के साहचर्य ने पत जी को सौदर्यजीवी के साथ स्वप्न और कल्पनाजीवी भी बनाया है। पत जी कल्पना के सत्य को सबसे बडा सत्य और ईश्वरीय प्रतिमा का अश मानते हैं। 'वीणा' से लेकर सद्य-प्रकाशित रचनाओ तक में वे अपनी कल्पना को ही वाणी देते रहे है। 'शेष सब विचार, भाव, शैली आदि उसकी पुष्टि के लिए गौण रूप से काम करते रहे है।'[1] कला शेष की पूर्ति है, पतजी के लिए भी और पतजी

पतजी की कला और कल्पना

१. पत, 'आधुनिक कवि' का पर्यालोचन, पृ० २९।

के इस 'शेष' की पूर्ति कल्पना मे होती है। पत जी के 'मानव', नारी, और प्रकृति सभी कल्पना में ही सम्पूर्णता पाते है। पत जी का मानव उनके मन-लोक का मानव है——उनकी चरम आकांक्षाओ का प्रतीक——

तुम मेरे मन के मानव,
मेरे गानो के गाने,

——पृ० ३५

पत जी की नारी एक सौंदर्य-कल्पना है। स्वप्न-लोक की राजकुमारी होने के कारण वह परी-सी अपार रूप धरती है——

हृदय के पलको में गति-हीन
स्वप्न-ससृति-सी सुखमाकार,
बाल-भावुकता बीच नवीन
परी-सी धरती रूप अपार,

——पृ० ६०

कवि की 'मृगेक्षिणि!' कल्पना का पर्याय है——'कल्पना तुम में एकाकार, कल्पना में तुम आठो याम'। प्रकृति भी पत जी के लिए दृष्टि का विषय न होकर, अनुभूति का विषय है। प्रकृति की शोभा निहारने ही उनके लोचन मुग्ध होकर बन्द हो जाते है और मुदे नयनो के पलको पर प्राकृतिक सुषमा स्वप्न के चल-चित्र खीचने लगती है।[1] इस प्रकार पत जी की कला प्रत्येक वस्तु को कल्पना के रेशमी धागे में बाँधकर आत्मा तक खीच लाती है, यह उसका एक गुण है। इसी के कारण पत जी का नारी-चित्र मोहक हुआ है और सयोग-गीत सफल।[2]

हिन्दी में पत जी की कल्पना-शक्ति विरल है। उनकी कल्पना में सृष्टि रचने की अजेय क्षमता है। उनमें बडी ऊँची उडान है——शेली जैसी। शेली की तरह पत जी ने भी अपने वर्ण्य विषयो——भावीपत्नी,

---

१ देखिए पृ० ८५–८६
२ देखिए पृ० १०७–१०

चाँदनी, अप्सरा, एक तारा आदि को विविध भावो से अलकृतकर अद्भुत सृष्टि-प्रतिमा का परिचय दिया है। कवि की 'भावी-पत्नी' के रूप-परिधान साधारण नही है—

अरुण-अधरो का पल्लव-प्रात,
मोतियो सा हिलता-हिम-हास
इन्द्रधनुषी-पट से ढँक गात
बाल-विद्युत सा पावस-लास,

—पृ० ४१

और उसकी प्रेयसि की 'नील-नलिन-सी' आखें भी तो असाधारण है, जाने किन-किन तत्त्वो से उनका निर्माण हुआ है—

मुग्ध स्वर्ण-किरणो ने प्रात
प्रथम खिलाए वे जल जात,
नील व्योम ने ढल अज्ञात,
उन्हे नीलिमा दी नवजात,
जीवन की सरसी उस प्रात
लहरा उठी चूम मधु-वात,
आकुल लहरो ने तत्काल
उनमे चचलता दी ढाल,

—पृ० ४७

पत जी की कल्पना में ऐसी ही सक्रियता है। उनके पास कल्पना का अक्षय भव है। उनकी कल्पना के वैभव, उदात्तता और नवनवोन्मेषी प्रतिभा का उनके शब्द-चित्रो की विविधता ओर अलकारो की विपुलता में सरलता से देखा जा सकता है।

पत्रो के आनत अधरो पर सो गया निखिल बन का मर्मर,
ज्यो वीणा के तारो में स्वर।

—पृ० ८४

ऐसी उत्प्रेक्षा ओर ऐमा चित्र उदात्त कल्पना के बल पर ही किया जा सकता है। कल्पना ही पत जी के शब्द-चित्रो और अलकारो—नही, नही, उनकी सम्पूर्ण कविता के 'आकर्षण का रहस्य' है।

स्वप्निल कला

पत जी ने अपनी कविता में 'स्वप्न' शब्द और उसके विशेपण 'स्वप्निल' शब्द का प्रयोग बार-बार किया है।

स्वप्न-सा, विस्मय-सा अम्लान,
प्रिय, प्राणो की प्राण !

—पृ० ८३

झलकती मेरी जीवन-स्वप्न ! प्रभात
तुम्हारी मुख छवि-सी रुचिमान !

—पृ० ५३

स्वप्न आते उड-उड कर पास ।
इन्ही मे छिपा कही अनजान
मिला कवि को निज गान !

—पृ० ७४

जग के अस्फुट स्वप्नो का
वह हार गूथती प्रतिपल,

—पृ० ८९

जगती के अनिमिष पलको पर
स्वर्णिम-स्वप्न समान,

—पृ० ९८

'स्वप्न के अवगुण्ठन' से जब हम पत जी के काव्य को देखते है तब उनकी एक विशेप मनोदशा का परिचय मिलता है। स्वप्न कल्पना का बोधक है। अत पत जी स्वप्न अर्थात् कल्पना के चिर प्रेमी है। उनका आदर्शवादी मन स्वप्न अर्थात कल्पना-लोक में सुख-शाति का अनुभव करता है। पत जी की कला स्वप्निल है।

'स्वप्न' शब्द उनकी कला के अन्य पक्षो का भी उदघाटन करता है। 'स्वप्न' का प्रयोग कल्पना के अतिरिक्त सुन्दरता, कोमलता, क्षणिकता इत्यादि के अर्थो में भी होता है।

कोमल नारी कला

पत जी की स्वप्नदर्शिनी कला कोमल है, विराट् नही। कला का विराट वृहत् रूप प्रसाद और निराला मे विकसित हुआ है। पत जी की कला नारी कला है—कोमलागी, कोकिलकठी और इन्द्रधनुषी परिधान और प्रसाधनवाली। उनके वर्ण, शब्द, सगीत, चित्र आदि सभी कोमल है। उनके पुल्लिग शब्दो के स्त्रीलिंग प्रयोग से भी कोमलता और नारीत्व का मोह निगत होता है। उनके विचारो मे भी एक प्रकार का सौकुमार्य मिलेगा। उन्होने 'कोमल मनज कलेवर' की कल्पना की है और 'अविराम प्रेम की बाहो में' मुक्ति पाई है। उन्होने प्रकृति के कोमल रूप को ग्रहण किया है—प्रकृति की कल्पना नारी-रूप मे की है और निसर्ग से एकाकार होते स्वय अपने को भी नारी मान लिया है।[1] उनके काव्य मे विराट का सघर्ष नही, कोमल का समन्वय है क्योकि उनकी कल्पना ने विभिन्न काल-पुरुषो के विचार-सूत्रो का आशय ग्रहणकर एक समन्वयवादी आदर्शवाद को अवतरित किया है।[2] उसके कारण उनके काव्य मे कही-कही विषमवादी सुर भी सुनाई पडता है,[3] पर इसे हम उनकी प्रगतिशील आत्मा का प्रमाण भी मान सकते है।

स्वप्न-चित्र

'स्वप्न' शब्द की प्रयोग-बहुलता से पत जी की कला की एक और विशेषता प्रगट होती है। पत जी का काव्य 'चित्र-वाक्य काव्य' का उदाहरण है। उनके लिए प्रत्येक शब्द एक चित्र है और उनकी मूर्तिविधायिनी कल्पना प्रत्येक भाव को आकार देती है, इस पर हम विचार कर चुके

---

१. देखिए पृ० ८२
२ देखिए पृ० ६६
३ देखिए पृ० ६७

है।[1] यहाँ यह कहना अभीष्ट है कि पंत जी के चित्र मुख्यतः स्वप्न-चित्र हैं। स्वप्न के चित्र क्षणिक होते हैं। सपने में चित्र बनते और मिटते जाते हैं--चित्र पर चित्र खड़ा होता जाता है। पंतजी के काव्य में भी चित्रों का हुजूम उमड़ा रहता है--एक को ठेलकर दूसरा चित्र सामने आता जाता है, चल-चित्रों की रील की तरह। मानो, कवि स्वप्न देख रहा है। उसके स्वप्नाकाश में बादल की टुकड़ियाँ चित्र बनकर आ रही हैं और हवा के झोंकों से उड़ती जा रही हैं। इधर उसकी कुशल लेखनी उन सभी चित्रों को शब्दों में बाँधने के लिए यत्न कर रही है। इसलिए पंत जी के चित्रों की समग्रता की अपेक्षा खण्डता ही दर्शनीय है। वैसे 'बन-बन उपवन---' वाली कविता में वसन्त और भाव का एकतान विकास हुआ है और 'चाँदनी' (पहली) आदि रचनाओं में बाह्य और अन्तस की अखंड गतिशीलता अच्छी बन पड़ी है, पर सामूहिक रूप में पंत जी को शब्द और खण्ड-चित्रों में पूर्णचित्रों की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है। शायद पंत जी में कल्पना की वह एकतानता नहीं है, जो प्रसाद और निराला में है। हाँ शब्द और खण्डचित्र का क्षेत्र पंत जी का है और उसपर उनका अधिकार है।

प्रथम यौवन मेरा मधुमास,
मुग्ध-उर मधुकर, तुम मधु, प्राण!
शयन लोचन, सुधि स्वप्न-विलास,
मधुर-तंद्रा प्रिय-ध्यान,
शून्य जीवन निसङ्ग आकाश,
इन्दु-मुख इन्दु समान,
हृदय सरसी, छवि पद्म-विकास,
स्पृहाएँ, ऊर्मिल-गान!

—पृ० ६५

---

1 देखिए पृ० १५०–५३

यहाँ चार चित्र है, चार रूपक है—एक मधुमास का, दूसरा स्वप्न का, तीसरा आकाश का और चौथा सरसी का। सर्वप्रथम कवि यौवन के मधुमास में प्रेयसि का मधु पाकर मुग्ध हो जाता है। तब उसकी आँखें बन्द हो जाती है और प्रियतमा की सुखद स्मृतिया स्वप्न बनकर छाने लगती है। स्वप्न में उसकी कल्पना जाग्रत हो उठती है और वह आकाश में जा पहुँचता है जहाँ चन्द्रमुखी इन्दु बनकर उसके शून्य जीवन को प्रकाशित करती है। अत म उस प्रकाश को पाकर वह फिर हृदय-सरोवर में उतर जाता है जहाँ उसकी प्रेमिका की छबि पद्म को विकसित कर रही है।

किस तरह एक चित्र क्षणभर प्रकाशित होकर मिट रहा है और उसकी जगह दूसरा प्रतिबिम्बित हो रहा है इसे बताने की विशेष आवश्यकता नही। ये चित्र स्वप्न-चित्र है। चारो चित्र, चारो रूपक अपनी सीमा मे बहुत सुन्दर और सुगठित है। उनमें एक प्रकार की समग्रता और भाव-विकास भी है। पर इस समग्रता और विकास तक पहुँचने के लिए पाठक को कसरत करनी पडती है—पहले तो वह वसन्त को देखता है पर तुरत ही उसे आँखें मूद लेनी पडती है, फिर वह झट से आकाश मे जा पहुँचता है पर दूसरे ही क्षण उसे सरोवर में कूदना पडता है। हाँ, स्वप्न की स्थिति में पहुँचने पर यह परिस्थिति उत्पन्न नही होती।

पत जी के चित्रो की असम्बद्धता को ध्यान में रखकर निराला ने उनकी 'चाँदनी' (दूसरी) शीर्षक कविता की बडी कटु आलोचना की है और पत जी की कला से अपनी कला को श्रेष्ठ बतलाया है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए हम उसे समग्रता में उदधृत करते है।

" 'गुञ्जन' में पन्त जी की 'चाँदनी' कविता है, ७९ वें पृष्ठ से शुरू होती है।[१] जिस कवि की 'गुजन' की प्रति मेरे पास है उसमें उसने

---

१ नये सस्करण में यह कविता ८७ पृष्ठ से शुरू होती है। (लेखक)

'V good' (अति उत्तम) लिख रखा है। कविता काफी लम्बी है। थोडे उद्धरण से इसके ढग का विवेचन करूँगा। इस कविता में यह ढग सर्वत्र है। पाठक पुस्तक में पूरी कविता पढकर मिला लेंगे।

चाँदनी

'नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद-हासिनि,
मृदु-करतल पर शशि-मुख धर, नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !
वह सोई सरित-पुलिन पर साँसो में स्तब्ध समीरण,
केवल लघु-लघु लहरो पर मिलता मृदु-मृदु उर-स्पन्दन।
अपनी छाया में छिपकर वह खडी शिखर पर सुन्दर,
है नाच रही शत-प्रति[1] छवि सागर की लहर-लहर पर।
वह शशि-किरणो से उतरी चुपके मेरे आँगन पर,
उर की आभा में खोई अपनी ही छवि से सुन्दर।
वह है, वह नही, अनिर्वच, जग उसमें, वह जग में लय,
साकार चेतना-सी वह, जिसमें अचेत जीवाशय।'

पहले का मतलब—'नीले आकाश के शत-दल (कमल) पर शुभ्र या शरद हँसी हँसनेवाली (शरद चाँदनी), अपनी कोमल हथेली पर शशि-मुख रखकर, चुपचाप, एकटक देखती हुई अकेली बैठती है।'

बीच में दो बन्द छोडकर चौथे का मैंने उद्धरण दिया है। वे दोनो बन्द पहलेवाले की ही तारीफ में आये है। चौथा बन्द यह है—

'वह नदी के तट पर सोई हुई है। साँसो में हवा स्तब्ध है (रुकी है जैसे), केवल लघु-लघु लहरो पर उसके हृदय का मृदु-मृदु स्पन्दन मिलता है।'

पहले देखिए कि पहले बन्द से या पहले भाव से दूसरे भाव का सम्बन्ध क्या है। कुछ न मिलेगा। वहाँ बैठी है, यहाँ सोई है। पहले में एक आलकारिक वर्णन है, दूसरे में एक है। उद्धृत तीसरे

---

१ नये सस्करण में 'शत-शत' पाठ है। (लेखक)

बन्द में देखिए (दूसरा और तीसरा सिलसिलेवार हैं), वह सुन्दर, अपनी छाया में छिपकर, शिखर पर खडी है—कैसा सम्बन्ध परस्पर मिलता जा रहा है ! उद्धृत चौथे में, वह कवि के आगन पर शशि-किरणो से उतरी हुई है । अन्त में वह है और वह है भी नही, याने उपदेशात्मक दर्शन-शास्त्र । पहले कला का विवेचन लिख चुका हूँ ।[१] उसके अनुसार यह कविता नही आती । फूल का कलावाला रूप मिलाइए । तन से डालें भिन्न होकर भी जुडी है, इसीतरह डाल या पत्त, पत्ता से फूल, फूलो मे खुशबू । खुशबू अपने तत्त्व में सारे पेड को ढके हुए है । तने का रूखापन, डालो की थोडी-थोडी हरियाली, पत्रो की पूरी, फूलो का एक या अनेक रगो—केशर पराग आदि से विकसित रूप, सुगन्ध सारे पेड के उच्चतम विकास को स्पष्ट करती हुई, उसी में उसे ढके हुए—यह कला है । यह बात पत जी की इस कविता में नही । हर बन्द अपना राग अलग अलाप रहा है । इनकी अधिकाश रचनाएँ ऐसी ही

---

१ वह यह कि 'कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अनुप्रास, रस, अलकार या ध्वनि की सुन्दरता नही, किन्तु इन सभी से सबद्ध सौंदर्य की पूर्ण सीमा है, पूरे अगो की सत्रह साल की सुन्दरी की आँखो की पहचान की तरह—देह की क्षीणता-पीनता में तरग-सी उतरती-चढती हुई, भिन्न वर्णों की बनी वाणी में खुलकर क्रमश मन्द-मधुरतर होकर लीन होती हुई—जैसे केवल बीज से पुष्प की पूरी कला विकसित नहीं होती, न अकुर से, न डाल से, न पौधे से, जड से लेकर, तना, डाल, पल्लव, और फूल के रग-रेणु-गध तक फूल की पूरी कला के लिए जरूरी है, वैसे ही काव्य की कला के लिए काव्य के सभी लक्षण, और जिस तरह फूलो की सुगन्ध पेड के ृश्य समस्त भाग को ढके हुए अपने सौदर्यतत्त्व के भीतर रखती है—पेड की काष्ठ-निष्ठुरता दिखती हुई भी छिपी रहती है, उसी तरह काव्य कला आवश्यक आशोभन वर्ण-सम्प्रदाय को अपनी मनोज्ञता के भीतर डाले रहती है ।'

ह । सब जगह एक-एक उपमा, रूपक या उत्प्रेक्षा काव्य को कला में परिगणित कराने के लिए है, और इसे ही आलोचकों ने अपूर्व कला समझ लिया है । उनकी दो-एक रचनाएं सम्बद्ध हैं पर वे भी उत्तम श्रेणी की नहीं बन सकीं, उनमें विषय की विशदता वैसी नहीं जैसी अलङ्कारों की चमक-दमक है । मैं लिख चुका हूँ, केवल रस, अलङ्कार या ध्वनि कला नहीं । अगर है तो कला के खण्डांश में है पूर्णांश में नहीं । खण्डांश में पंत जी की कला बहुत ही बन पड़ी है । उनके प्रशंसकों की दृष्टि इन्हीं खण्डरूपों में बँध गई है । वह विस्तृत होकर बृहत् विवेचन में नहीं जा सकी । वे प्रशंसक इस प्रकार की कला के देखने के आदी भी न थे । पहले से छन्द, दोहे, चौपाइयों की जो परिपाटी थी, वह इस कला के अनुरूप न थी ।

पन्त के उद्धृत बन्दों के सम्बद्ध भाव को छोड़कर एक-एक की आलोचना करके देखा गया, उनका रूप कहाँ तक ठीक है । इससे उनकी सौंदर्य-दर्शन-कला का कुछ हद तक भेद मालूम होगा । पहले बन्द का मतलब है—'नीले आकाश शतदल पर शरदहासिनी मृदु करतल पर शशि-मुख धारणकर, नीरव, अनिमिष, एकाकिनी बैठी है ।'—इसके लिए पहले तो यहाँ के साहित्यिक एतराज करेंगे कि रात को शतदल-कमल का ऐसा उल्लेख शास्त्र-विरुद्ध है, दूसरे, अच्छी तरह देखने पर यह शरद-हासिनी का नीले नभ के शतदल पर बैठना नहीं जँचता, कोई कल्पना ऐसी भले ही करे और इसे सच भी माने, पर असलियत कुछ और है, मालूम होता है—शशि-मुखवाली शरदहासिनी के सर पर नीला शतदल उलट दिया गया है, क्योंकि आकाश की नीलिमा चाँद और चाँदनी के ऊपर मालूम देती है, पाठक-साहित्यिक किसी चाँदनी-रात में चाहें तो यह सत्य प्रत्यक्ष कर लें । इस तरह का एक भाव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का याद आ रहा है—

'हेरो गगनेर नील शतदल खानि मेलिल नीरव वाणी, अरुण पक्ष प्रसारि सकौतुके सोनार भ्रमर आसिल ताहार बुके कोथा होते नाहीं जानी !'

अर्थ—'देखो, आकाश के नीले शतदल ने अपनी नीरव भाषा फैला दी, अरुण पख फैलाकर, सकौतुक, न जाने कहाँ से सोने का भौंरा उसके हृदय पर आ गया !'—

इस पद्य के अन्यान्य उच्चतर सम्बन्धों की चर्चा यहाँ न करूँगा। उतनी जगह नहीं। केवल प्रतिपाद्य विषय पर विचार करना है। यहाँ नभ का नील शतदल अपनी नीरव भाषा खोलता यानी खुलता है, प्रात -काल, रात्रि के समय नहीं, पुन , ऊपर दूसरा कोई चित्र न रहने के कारण आकाश केवल खुला हुआ शतदल मालूम देता है, इसके बाद सोने का भौंरा—सूर्य उसके हृदय पर कहीं से उड़कर आ जाता है। सूर्य भौंरे की तरह आकाश शतदल के एक बगल बैठता है, फिर धीरे-धीरे बीच हृदय पर आ जाता है। इसमें पत जी की जैसी अस्वाभाविकता नहीं मालूम देती। कारण, आकाश का कमल पहले रिक्त दिखलाया गया है।—केवल नील-नील मालूम देता है, फिर सूर्य भौंरे की तरह कहीं से उड़कर आ जाता है। पुन सूर्य चन्द्र से बहुत ऊँचे भी है। उसका नभ शतदल पर बैठना सार्थक मालूम देता है, दिन का समय तो है ही।

पन्त जी के उद्धृत दूसरे बन्द का मतलब—'वह सरित-पुलिन (नदी के तट) पर सोई है। साँसों में स्तब्ध समीरण है। केवल लघु-लघु लहरों पर मृदु-मृदु उर-स्पन्दन मिलता है।' बिना अर्थ की खींच-तान किये 'सरित-पुलिन पर' का अर्थ है 'नदी के तट पर'। स्वभावत शङ्का होती है कि वह नदी के तट पर सोई है तो उसके 'शशि मुख' का अब क्या हाल है, वह तो आकाश पर ही है। पुन , सोई तो वह नदी के तट पर है, पर उसकी हृदय की धड़कन है लहरों में !—यह है पन्त जी की बिगड़ी कला। यह किसी लक्षणा या व्यञ्जना से सार्थक नहीं हो सकती। कहीं-कहीं उनके चित्र सुन्दर हैं। पर इस उद्धरण में सर्वत्र ऐसा ही तमाशा है।"[१]

---

१ प्रबध प्रतिमा (निराला), पृ० २९१—२९५ ।

निराला जी के इस कथन को हम परिमार्जन के साथही स्वीकार करेंगे। चाँदनी पहले बन्द में बैठी है और दूसरे में अलसायी है—'वह स्वप्न-जड़ित नत-चितवन'। अत चौथे बन्द में उसका सो जाना अस्वाभाविक नही है। फिर चाँदनी कछार की रेत पर सोई है ओर धार रेत से मिली हुई है। अत उसके हृदय की धड़कन का लहरो पर प्रतिबिम्बित होना भी सिद्ध किया जा सकता है। पर इतना सही है कि इस प्रकार की सिद्धि महज सिद्धि नही, कष्टप्राप्य है। यह भी ठीक है कि पत जी की कला खण्डता में जितनी निखरी है उतनी समग्रता मे नही। अनेक कविताओ में कल्पना एकतान नही है। इस प्रकार की असावद्धता की पहले चर्चा हो चुकी है ओर कहा जा चुका है कि पत जी के चित्र स्वप्न-चित्र है। स्वप्न के भीतर से देखने पर इस प्रकार की असम्बद्धता पर आश्चर्य नही होता।

कविता में कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर कोरी कल्पना का नही। पत जी की आरम्भिक रचनाओं में कल्पना जितनी सजग है उतनी अनुभूति नही, पर बाद की कृतियो में कल्पना अनुभूति और अनुभूति एकतान होने लगी है। यह उनकी कला के विकास का सूचक है। कल्पना और अनुभूति के सयोग के कारण हो 'गुञ्जन' के प्रणय-गीतो की निर्मिति में पत जी को इतनी सफलता मिली है। हिन्दी के शृगारिक कवियो पर अस्वाभाविकता का लाछन लगाया गया है। बात यह है कि जब व विरह-वणन करने लगते है तब तो कल्पना के कँगूरे पर चढ जाते है और जब सयोग-शृगार की अवतारणा करते है तब कल्पना और अनुभूति को झटककर अत्यत स्थूल और निम्न-चित्र उपस्थित कर देते हे। अनुभूति उनका साथ नही देती। इस विशृखलता का अभाव पत जी को रीतिकालीन शृगारी कवियो से अलग एक उच्चतर भावजगत् में प्रतिष्ठित करता है। उवर कल्पना और मार्मिक अनुभूति उनकी प्रेमवर्णना के अपरिहार्य उपकरण है। इनके

सयोग से जहाँ 'परिवर्तन' आदि कविताओ में वियोग का सुन्दर विकास हुआ है वहा 'मधुवन', 'आज रहने दो यह गृह-काज', 'लाई हूँ फूलो का हास' आदि रचनाओ में सयोग का ।[1]

सत्य, शिव, और सुन्दर

आरम्भ में कला की तुलना अवतार से की गई थी । राम अवतारादर्श है । समर्थ आलोचक स्वर्गीय शुक्ल जी के अनुसार तुलसी के राम में शील, शक्ति और सौंदर्य है । तुलसी के राम की भाँति कला में भी ये तीनो तत्त्व है, पर यहाँ इनके नाम शिव, सत्य और सुन्दर है । पत जी मुख्यत सुन्दरम के कवि है । वे स्वप्नदर्शी है, इसलिए आदर्शवादी है । उनमें शिवत्व है । वे कल्पना के सत्य को सबसे बडा सत्य मानते है और सत्य के वास्तविक रूप से उसके आदर्श रूप को अधिक महत्त्व देते है ।

पत जी की कला में शिव और सुन्दर की उपस्थिति है इस सम्बन्ध में मतभेद नही है । पर प्राय यह कहा जाता है कि पत जी की रचनाओ से सुन्दरम् और शिवम् से भी बडे लक्ष्य सत्यम का बोध नही होता है और न उनमें वह अनुभूति की तीव्रता मिलती है जो सत्य की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है । पत जी ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया है—'यह सच है कि व्यक्तिगत सुख दुख के सत्य को, अपने मानसिक सघर्ष को मैंने अपनी रचनाओ में वाणी नही दी है, क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है । मैंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है । गुजन में 'तप रे मधुर मधुर मन', 'मैं सीख न पाया अबतक सुख से दुख को अपनाना' आदि अनेक रचनाएँ मेरी इस रुचि की द्योतक हैं । मुझे लगता है कि सत्य शिव में स्वय निहित है । जिस प्रकार फूल में रूप रग है, फल में जीवनोपयोगी रस, और फूल की परिणति फल में सत्य के नियमो द्वारा होती है उसी प्रकार सुन्दरम् की परिणति शिवम में सत्य के द्वारा हो सकती है । यदि कोई वस्तु उपयोगी (शिव) है तो उसके आधारभूत कारण उस

---

१. देखिए पृ० १०७

उपयोगिता से सबध रखनेवाले सत्य में अवश्य होने चाहिए, नही तो वह उपयोगी नही हो सकती। इसी प्रकार अनुभति की तीव्रता भी सापेक्ष है, और मेरी रचनाओ मे उसका सबध मेरे स्वभाव से है। सत्य के दोना रूप है,--शराबी शराब पीता है यह सत्य है, उसे शराब नही पीना चाहिए, यह भी सत्य है। एक उसका वास्तविक (फैक्चुवल) रूप है, दूसरा परिणाम से सम्बन्ध रखनेवाला। मेरी रचनाओ मे सत्य के दूसरे पक्ष के प्रति मोह मिलता है, वह मेरा सस्कार है, आत्मविकास (सबलिमेशन) की ओर जाना। अनुभूति की तीव्रता का बोध बहिर्मुखी (एक्स्ट्रोवर्ट) स्वभाव अधिक करवा सकता है, मगल का बोध अतमुखी (इट्रोवट) क्योकि दूसरा कारण रूप अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त न कर उसके फलस्वरूप कल्याणमयी अनुभूति को वाणी देता है। मेरे पल्लव काल की रचनाओ में, तुलनात्मक दृष्टि से मानसिक सघर्ष और हार्दिकता मिलती है और बाद की रचनाओ में आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की इच्छा।"[१]

'पल्लव' से 'गुजन' की ओर आते हुए पत जी सुन्दरम् से शिवम् के क्षेत्र में आते हुए दीखते है। अत पूर्व रचनाओ मे 'गुजन' में शिवत्व ने अधिक प्राधान्य पाया है।

'गुजन' मे शिव-तत्त्व और कला

'गुजन' की कला मागलिक है और कला का मागलिक रूप वरेण्य है। पर 'गुजन' में पत जी की भावधारा के आकस्मिक दिशा-परिवर्तन के कारण शिवम् और सुन्दरम् का एकात समाहार प्राय नही हो सकता है। स्थान-स्थान पर कोरी दार्शनिकता और बौद्धिक विवेचन के कारण शुष्कता और एकरसता आ गई है। पत जी की भावुक कोमल कला ज्ञानोपदेश के इस अप्रत्याशित भार का वहन करने में सर्वत्र सफल नही हुई है।

झर गई कली, झर गई कली।
चल-सरित-पुलिन पर वह विकसी,

---

१. आधुनिक कवि (पत)--पृ० ५--६

उर के सौरभ से सहज-बसी,
सरला प्रात ही तो विहँसी,
  रे कूद सलिल में गई चली !
आई लहरी चुम्बन करने,
अधरो पर मधुर अधर धरने,
फेनिल मोती से मुह भरने,
  वह चचल मुख से गई छली !

निज वृत पर उसे खिलना था,
नव नव लहरो से मिलना था,
निज सुख-दुख सहज बदलना था,
  रे गेह छोड वह बह निकली ।

यह कविता एक सुन्दर अन्योक्ति हो सकती है । इसका आरम्भिक विकास अति प्रशस्त है । पर जब आगे के बन्द में हम पढते हैं 'निज वृत पर उसे खिलना था' इत्यादि—तो लगता है जैसे कविता की कमर टूट गई । कविता की भावुकता एव कल्पना चली गई और काव्य की जगह वेदान्त बैठ गया ।

'नौका-विहार' पत जी की एक अनूठी प्रकृति-गीतिका है और इसमें पत जी की कला का एक नया विकास हुआ है क्योकि इसमें कल्पना का सौदय नही, यथाथ चित्रण का सोदर्य है । किन्तु अत में जल-प्रवाह से एक दार्शनिक निष्कर्ष निकालकर कि—

इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
  शाश्वत है गति, शाश्वत सगम ।
शाश्वत नभ का नीला-विकास, शाश्वत शशि का यह रजत-हास,

—उसके सहज सौदय को बिगाड दिया गया है । कविता का सहज सुन्दर प्रवाह इस निष्कर्षपूण उपसहार के लिये तैयार न था ।

पत जी की यह मागलिक कला आगे कल्पना और अनुभूति के सयोग से विकसित होगी ।

मेरी कला

(श्री सुमित्रानन्दन पंत)

जब मैंने पहले लिखना प्रारंभ किया था, तब मेरे चारों ओर केवल प्राकृतिक परिस्थितियां तथा प्राकृतिक सौंदर्य का वातावरण ही ऐसी सजीव वस्तु थे, जिनसे मुझे प्रेरणा मिलती थी। और, किसी ऐसी परिस्थिति या वस्तु की मुझे याद नहीं, जो मेरे मन को आकर्षित कर मुझे गाने अथवा लिखने की ओर अग्रसर करती रही हो। मेरे चारों ओर की सामाजिक परिस्थितियाँ तब एक प्रकार से निश्चल तथा निष्क्रिय थी, उनके चिरपरिचित पदार्थ में मेरे किशोर-मन के लिए किसी प्रकार का आकर्षण नहीं था। फलतः मेरी प्रारंभिक रचनाएँ प्रकृति की ही लीलाभूमि में लिखी गई हैं। पर्वत प्रांत की प्रकृति के नित्य नवीन तथा परिवर्तनशील रूप से अनुप्राणित होकर मैंने स्वतः ही जैसे किसी अंतर्विवशता के कारण पक्षियों तथा भ्रमरों के स्वर में स्वर मिलाकर, जिन्हें तब मैंने विहग-बालिका तथा मधुबाला कहकर संबोधित किया है, पहले-पहल गुनगुनाना सीखा है।

मेरी प्रारंभिक रचनाएँ 'वीणा' नामक संग्रह के रूप में प्रकाशित हुई हैं। इन रचनाओं में प्रकृति ही अनेक रूप धारणकर चपल मुखर नूपुर बजाती हुई अपने चरण बढ़ाती रही है। समस्त काव्य-पट प्राकृतिक सुंदरता की धूप-छाँह से बुना हुआ है। चिड़िया, भौंरे, झिल्लियाँ, झरने, लहर आदि जैसे मेरे बाल कल्पना के छायावन में मिलकर वाद्यतरंग बजाते रहे हैं।

'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि,
तूने कैसे पहचाना
कहो कहाँ हे बाल-विहंगिनि,
पाया तूने यह गाना।'

अथवा

'आओ सुकुमारी विहगबाले,
निज कोमल कलरव में भरकर
अपने कवि के गीत मनोहर
फैला आओ बन-बन, घर-घर
नाचे तृण तरु पात ।'

आदि गीत आपको 'वीणा' में मिलेंगे, जिनके भीतर से प्रकृति गाती है।

—'उस फैली हरियाली में, कौन अकेली खेल रही मॉ वह अपनी वयवाली मे ?' अथवा, 'छोड द्रुमो की मृदु छाया, तोड प्रकृति से भी माया बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दू लोचन' आदि अनेक उस समय की रचनाएँ तब मेरे प्रकृति-विहारी होने की साक्षी है।

जिस प्रकार प्रकृति ने मेरे किशोर-हृदय को अपने सौंदर्य से मोहित किया है, उसी प्रकार पर्वत-प्रदेश की निर्वाक अलघ्य गरिमा तथा हिम-राशि की स्वच्छ शुभ्र चेतना ने मेरे मन को आश्चर्य तथा भय से अभिभूत कर उसमे अपने रहस्यमय मौन सगीत की स्वर-लिपि भी अंकित की है। पर्वत-श्रेणियो का वह मौन सदेश मेरी प्रारभिक रचनाओं मे विराट् भावनाओ अथवा उदात्त स्वरो में अवश्य नही अभिव्यक्त हो सका है, किन्तु मेरे रूप-चित्रो के भीतर से एक प्रकार का अरूप-सौंदर्य यत्र-तत्र अवश्य छलकता रहा है, और मेरी किशोर-दृष्टि को चमत्कृत करनेवाले प्राकृतिक सौंदर्य में एक गभीर अवर्णनीय पवित्रता की भावना का भी अपने-आप ही समावेश हो गया है।

'अब न अगोचर रहो सुजान,
निशानाथ के प्रियवर सहचर—
अधकार स्वप्नो के यान,
तुम किसके पद की छाया हो,
किसका करते हो अभिमान ?

अथवा

तुहिन विदु बनकर सुदर,
कुमुद-किरण से उतर-उतर
मा, तेरे प्रिय पद-पद्मो में
अर्पण जीवन को कर दू
इस ऊशा की लाली में"

आदि पक्तियो म पवत-प्रदेश के रहस्यमय अधकार की गभीरता ओर वहा के प्रभात की पावनता तथा निर्मलता एक अतर्वातावरण की तरह अथवा सूक्ष्माकाश की तरह व्याप्त है । 'वीणा' की रचनाओ मे मेरे अध्ययन अथवा ज्ञान की कमी को जैसे प्रकृति ने अपने रहस्य सकेत तथा प्रेरणाबोध से पूरा कर दिया है । उनके भीतर से एक प्राकृतिक जगत का सहज उल्लास तथा अनिर्वचनीय पवित्रता फूटकर स्वत काव्य का उपकरण अथवा उपादान बन गई है ।

'वीणा' के बाद की रचनाएँ मेरे 'पल्लव'-नामक सग्रह में प्रकाशित हुई हैं । 'पल्लव'-काल में मझसे प्रकृति की गोद छिन जाती है । 'पल्लव' की रूप-रेखा में प्राकृतिक सौदय तथा उसकी रगीनी तो वर्तमान रहती है, किंतु केवल प्रभावो के रूप में—उसस वह सान्निध्य का सदेश लुप्त हो जाता है ।

'कहो हे सुदर विहग-कुमारि,
कहाँ से आया यह प्रिय गान'

अथवा

'सिखा दो ना हे मधुपकुमारि
मुझे भी अपना मीठा गान ।'

'आदि 'पल्लव'-काल की रचनाओं में विहग, मधुप, निर्झर आदि तो वर्तमान है, उनके प्रति हृदय की ममता ज्यो-की-त्यो बनी हुई है, लेकिन अब जैसे उनका साहचर्य अथवा साथ छूट जाने के कारण वे स्मृति-चित्र भावना के प्रतीक भर रह गए हैं । उनके शब्दो में कला का सौदय है,

प्रेरणा का सजीव स्पर्श नही। प्रकृति के उपकरण राग-वृत्ति के स्वर बन गए है, वे अकलुष हृदयिक मुग्धता के वाहन अथवा वाहक नही रह गए है। 'वीणा' काल के प्राकृतिक सौदर्य का सहचारी 'पल्लव' की रचनाओ में भावना के सौदर्य की माग बन गया है, प्राकृतिक रहस्य की भावना ज्ञान की जिज्ञासा मे परिणत हो गई है। 'वीणा' की रचनाओ में जो स्वाभाविकता मिलती है, वह 'पल्लव' में कला, सस्कार तथा अभिव्यक्ति के माजन मे बदल गई है। बाहर का रहस्यमय पर्वत-प्रदेश आँखो के सामने से ओझल हो जाने के कारण एक भीतरी रहस्यमय प्रदेश मन की आखो को विस्मित करने लगा है। अब भी 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश' वाला पर्वत का दृश्य सामने आता है, पर उसके साथ सरल शैशव की सुखद स्मृति-सी एक बालिका भी मनोरम मित्र बनकर पास ही खडी दिखाई देती है। बाल-कल्पना की तरह अनेक रूप धरनेवाले उडते बादलो में हृदय का उच्छ्वास और तुहिन बिंदु-सी चचल जल की बूदे, आसुओ की धारा मिल गई है। प्रकृति का प्रागण छाया-प्रकाश की वीथी बन गया है, उसके भीतर से हृदय की भावना अनेक रूप धारणकर विचरण करती हुई दिखाई पडती है। उपलो पर नहुरगी लास तथा भगिमय भृकुटि-विलास दिखानेवाली निश्चल निर्झरी अब सजल आसुओ की अचल-सी प्रतीत होती है। निश्चय ही, 'पल्लव' की काव्य-भूमिका से 'वीणा'-काल का पवित्र प्राकृतिक सौदर्य 'उड गया अचानक लो भूधर, फडका अपार वारिद के पर' सदृश ही विलीन हो जाता है। उसके स्थान पर 'रव शेष रह गए है निर्झर' शेष रह जाते है। उस पवित्रता का स्पर्श पाने के लिए हृदय जैसे छटपटा कर प्रार्थना करने लगता है—'विहग-बालिका का मृदुस्वर, अध खिले वे कोमल अग, क्रीडा कौतूहलता मन की, वह मेरी आनद उमग'—'अहा दयामय, फिर लौटा दो मेरी पद-प्रिय चचलता, तरल तरगो-सी वह लीला, निर्विकार भावना-लता!'

'पल्लव' की अधिकाश रचनाएँ प्रयाग में लिखी गई है। १९२१ के असहयोग-आदोलन के साथ ही हमारे देश की बाहरी परिस्थितियो ने

भी जैसे हिलना-डुलना सीखा है। युग-युग से जड़ीभूत उनकी वास्तविकता में सक्रियता तथा जीवन के चिन्ह प्रकट होने लगे। उनके स्पंदन, कंपन तथा जागरण के भीतर से एक नवीन वास्तविकता की रूप-रेखाएँ मन को आकर्षित करने लगी। मेरे मन के भीतर वे संस्कार धीरे-धीरे संचित तो होने लगे, पर 'पल्लव' की रचनाओं में ये मुखरित नहीं हो सके। न उसके स्वर उस नवीन भावना को वाणी देने के लिए पर्याप्त तथा उपयुक्त ही प्रतीत हुए। 'पल्लव' की सीमाएँ छायावाद की अभिव्यंजना की सीमाएँ थीं। वह पिछली वास्तविकता के निर्जीव भार से आक्रांत उस भावना की पुकार थी, जो बाहर की ओर राह न पाकर 'भीतर' की ओर स्वप्न-सोपानों पर आरोहण करती हुई, युग के अवसाद तथा विवशता को वाणी देने का प्रयत्न कर रही थी और, साथ ही, काल्पनिक उड़ान द्वारा नवीन वास्तविकता की अनुभूति प्राप्त करने की चेष्टा कर रही थी। 'पल्लव' की सर्वोत्तम तथा प्रतिनिधि-रचना 'परिवर्तन' में विगत वास्तविकता के प्रति असंतोष तथा परिवर्तन के प्रति आग्रह की भावना विद्यमान है। साथ ही, जीवन की अनित्य वास्तविकता के भीतर से नित्य सत्य को खोजने का प्रयत्न भी है, जिसके आधार पर नवीन वास्तविकता का निर्माण किया जा सके। 'गुंजन'-काल की रचनाओं में नित्य सत्य पर जैसा मेरा दृढ़ विश्वास प्रतिष्ठित हो गया है।

'सुंदर से नित सुंदरतर,
सुंदरतर से सुंदरतम
सुंदर जीवन का क्रम रे,
सुंदर-सुंदर जग -जीवन'

आदि रचनाओं में मेरा मन परिवर्तनशील अनित्य वास्तविकता के ऊपर उठकर नित्य सत्य की विजय के गीत गाने को लालायित हो उठा है और उसके लिए आवश्यक साधना को भी अपनाने की तैयारी करने लगा है। उसे यह भी अनुभव होने लगा है कि 'चाहिए विश्व को नव जीवन !',

और वह इस आकाक्षा से व्याकुल भी रहने लगा है । 'ज्योत्स्ना' में मैंने इस नवीन जीवन तथा युग-परिवर्तन की धारणा को एक सामाजिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है । पल्लवकालीन जिज्ञासा तथा अवसाद के कुहासे से निखर कर 'ज्योत्स्ना' जगत-जीवन के प्रति एक नवीन विश्वास, आशा तथा उल्लास लेकर प्रकट होता है । 'युगात' में मेरा वह विश्वास बाहर की दिशा में भी सक्रिय हो गया है और विकास का हृदय क्रातिवादी भी हो गया है । 'युगात' की क्राति की भावना में आवेश है और है एक मनुष्यत्व के प्रति सकेत । अनित्य वास्तविकता का बोध मेरे मन में पहिले परिवर्तन और फिर क्राति का रूप धारण कर लेता है । नित्य सत्य के प्रति आकर्षण नवीन मानवता के रूप में प्रस्फुटित होने लगता है । दूसरे शब्दो में, बाहरी क्राति की अभावात्मकता की पूर्ति मेरा मन नवीन मनुष्यत्व की भावात्मक देन द्वारा करना चाहता है । 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र, हे त्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण' द्वारा जहाँ पिछली वास्तविकता को बदलने के लिए ओजपूर्ण आह्वान है वहाँ 'ककाल जाल जग में फैले फिर नवल रुधिर पल्लव लाली में' 'पल्लव'-काल की स्वप्न चेतना द्वारा उस रिक्त स्थान को भरने के लिए आग्रह भी है ।

'गा कोकिल ! बरसा पावककण !
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन
ध्वस-भ्रश जग के जड बधन'

के साथ ही 'हो पल्लवित नवल मानवपन', 'रच मानव के हित नूतन मन' भी मैंने कहा है । यह क्राति-भावना, जो अब साहित्य में प्रगतिवाद के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी है, मेरी ताज, कलरव आदि युगातकालीन रचनाओ में विशेष रूप से अभिव्यक्त हो सकी है और मानववाद की भावना 'युगात' की 'मानव', 'मधुस्मति', आदि रचनाओ में । 'बापू के प्रति' शीर्षक मेरी उस समय की रचना गाधीवाद की ओर झुकाव की द्योतक है, जो 'युगवाणी' में भूतवाद तथा अध्यात्मवाद के प्रारभिक समन्वय का रूप धारणकर

लेती हैं। 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में मेरी क्रांति की भावना मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित ही नहीं होती, उसे आत्मसात करने का भी प्रयत्न करती है।

'भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
जहाँ आत्मदर्शन अनादि से समासीन अम्लान'

अथवा

'मुझे स्वप्न दो, मन के स्वप्न––आज बनो तुम फिर नव मानव।'

'संस्कृति का प्रश्न,' 'सांस्कृतिक हृदय', आदि उस समय की अनेक रचनाएँ मेरी उस सांस्कृतिक तथा समन्वयात्मक प्रवृत्ति की द्योतक हैं। 'ग्राम्या' मेरी सन् १९४० की रचना है, जब प्रगतिवाद हिंदी-साहित्य मे घुटनो के बल चलना सीख रहा था। आज के दिन प्रगतिवाद जिस प्रकार वर्गयुद्ध की भावना के साथ दृढ कदम रखकर आगे बढ़ना चाहता है, इस दृष्टि से 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' को प्रगतिवाद की तुतलाहट ही कहना पड़ेगा। सन् १९४० के बाद का समय द्वितीय विश्वयुद्ध का वह काल रहा है, जिसमें भौतिक विज्ञान तथा मांस-पेशियों की संगठित शक्ति ने मानवता के हृदय पर नग्न पैशाचिक नृत्य किया है। सन् ४२ के असहयोग-आंदोलन में भारत को जिस पाशविक अत्याचार तथा नृशंसता का सामना करना पड़ा, उससे हिंसात्मक बाह्य क्रांति के प्रति मेरा समस्त उत्साह अथवा मोह विलीन हो गया। मेरे हृदय में यह बात गंभीर रूप से अंकित हो गई कि नवीन सामाजिक संगठन राजनीतिक-आर्थिक आधार पर होना चाहिए। यह धारणा सर्वप्रथम सन् १९४२ में मेरी 'लोकायन' की योजना में प्रकट है। आगे चलकर 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्णधूलि' की रूप-रेखा तथा नवीन मान्यताओं का आधार क्या हो, इस संबंध में मेरे मन में ऊहापोह चल ही रहा था कि इसी समय मैं श्री अरविंद के जीवनदर्शन के संपर्क में आ गया और मेरी 'ज्योत्स्ना'-काल की चेतना एक नवीन युग-प्रभात की व्यापक चेतना में प्रस्फुटित होने लगी जिसको मैंने प्रतीकात्मक रूप से स्वर्णचेतना कहा है। और, मेरा विश्वास धीरे-धीरे और भी

दृढ हो गया कि नवीन सांस्कृतिक आरोहण इसी नवीन चेतना के आलोक में संभव हो सकता है, जो मनुष्य की वर्तमान मानसिक चेतना का अतिक्रम कर उसे एक अधिक ऊँचे, गंभीर तथा व्यापक धरातल पर उठा देगी। और, इस प्रकार आनेवाली क्रांति केवल रोटी की क्रांति, समान अधिकारों की ही क्रांति न होकर जीवन के प्रति दृष्टिकोण की क्रांति, मानसिक मान्यताओं की क्रांति तथा सामाजिक तथा नैतिक आदर्शों की भी क्रांति होगी। दूसरे शब्दों में भावी क्रांति राजनीतिक-आर्थिक क्रांति तक ही सीमित न रहकर आध्यात्मिक क्रांति भी होगी, क्योंकि वस्तु-जगत् के प्रति हमारे ज्ञान का स्तर हमारी आध्यात्मिक धारणा के सूक्ष्म स्तर से अविच्छिन्न रूप में जुड़ा हुआ है, और वर्तमान युग की विशृंखलता को नवीन मानवीय सामंजस्य देने के लिए मनुष्य की अन्नप्राण-संबंधी चेतनाओं का [illegible] होना आवश्यक तथा अवश्यंभावी है, जिसे मैंने 'स्वर्णकिरण' में इस प्रकार कहा है —

'ज्योतित हो गई धरती,

जीवन !' (मज्जित)

सहायक साहित्य

१ सुमित्रानन्दन पत (श्री नगेन्द्र)
२ पत और गुञ्जन (श्री हरिहर निवास द्विवेदी)
३ पत का 'गुञ्जन'--एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (प्रो० विश्वनन्दन प्रसाद)
४ पत और पल्लव (कविवर निराला)
५ प्रबध-प्रतिमा ('मेरे गीत और कला'--कविवर निराला)
६ हिन्दी साहित्य और बीसवी शताब्दी (श्री सुमित्रानदन पत--श्री नन्ददुलारे वाजेपेयी)
७ विचार और विवेचन (पत जी का नवीन जीवन दर्शन--डा० नगेन्द्र)
८ पल्लव (भूमिका--श्री सुमित्रानदन पत)
९ वीणा (भूमिका--श्री सुमित्रानदन पत)
१० आधुनिक कवि, २ (पर्यालोचन--श्री सुमित्रानदन पत)
११ युगान्त (चित्र-रेखा--श्री दीनानाथ पत)
१२ हिमालय वर्ष १, अक १२ (सुमित्रानन्दन पत--श्री विश्वमोहन सिह)
१३ नया साहित्य, भाग तीन (सुमित्रानदन पत का 'मानव'--दि० के० बेडेकर)
१४ प्रतीक, ९ शरद (सुमित्रानदन पत--श्री 'बच्चन')
१५ प्रतीक, ४ हेमन्त (मेरा रचना काल--श्री सुमित्रानन्दन पत)
१६ प्रतीक, ३ शरद् (युगवाणी पर एक दृष्टि--श्री सुमित्रानदन पत)
१७ पारिजात, ५ ('स्वर्ण किरण'--पत किधर श्री चन्द्रबली सिह)
१८ हिमालय, वर्ष २, अक २, (स्वर्ण किरण--श्री विद्यार्थी)

१९ नया साहित्य, मई १९४९ (जन संघर्ष से दूर रहनेवाले साथी, सोने के रंग की राजनीति और उसकी साहित्यकला अपनी बात)

२० हंस, कविता-अंक १९४१ (रहस्यवादी कविता का केन्द्र-बिन्दु-श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी)

२१ छायावाद का पतन (डा० देवराज)

२२ छायावाद (श्री रामरतन भटनागर)

२३ काव्य और कला तथा अन्य निबंध (श्री जयशंकर प्रसाद)

२४ चाबुक (श्री निराला)

२५ हिन्दी साहित्य का इतिहास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

२६ आधुनिक हिन्दी साहित्य (डा० वार्ष्णेय)

२७ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (डा० कृष्ण लाल)

२८ विचार और अनुभूति (आधुनिक काव्य के आलोचक—डा० नगेन्द्र)